चतुर्थ अध्याय

हरिशंकर परसाईजी की कहानियों में व्यंग्य ।

अ) सामाजिक व्यंग्य ।

ब) धार्मिक व्यंग्य ।

क) राजनीतिक व्यंग्य ।

ड) आर्थिक व्यंग्य ।

इ) प्रशासनिक व्यंग्य ।

ई) साहित्यिक व्यंग्य ।

ठ) व्यक्तिगत व्यंग्य ।

चतुर्थ अध्याय

हरिशंकर परसाईजी की कहानियों में व्यंग्य :

हरिशंकर परसाईजी संपूर्ण जीवन दर्शन से संपन्न व्यक्ति हैं। वे एक जागरूक और प्रगतिशील साहित्यकार है। उन्होंने अनुभव किया है कि, मनुष्य का जीवन टुकडों में विभाजित हुआ है, जिसे एकसंघता में बदलना, अर्थवान बनाना जरूरी है। व्यक्ति जीवन में परिवर्तन लाकर, पूरे समाज को एक नया प्रकाश देते समय संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को ही बदलना चाहिए। इसलिये तो उन्होंने सामाजिक विसंगतियों को लक्ष्य करते हुये यथार्थवादी व्यंग्यलेखन किया। उनके व्यंग्यलेखन का सामाजिक पक्ष देखते समय ऐसे कई उदाहरण मिलेंगे, जो सामाजिक आशयों से भरपूर हैं।

प्रत्येक काल में सामाजिक स्थितियों के अंतर्विरोध अलग अलग रूपमें देखने को मिलते हैं। इन अंतर्विरोधों का अध्ययन करना तथा उससे तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक अनुभवों की प्राप्ति करना संभव है। यह बात परसाईजी के लेखन के आधारपर सही लगती है। सामंतवाद का -ह्रास और पूँजीवादका उदय, यह बदली हुवी सामाजिक स्थिति है। इस पूँजीवादी औद्योगीकरण ने वर्गसंघर्ष और वर्ग भेद को तीव्र बनाया, शोषण और मुनाफा खोरी जैसी प्रवृत्तियों को विशेष महत्व दिया। जीवन के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार दिखायी देने लगा। शिक्षा जगत तथा धर्म का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा। भौतिक, सामाजिक स्थितियों के परिवर्तन के परिणाम स्वरूप प्रत्येक सामाजिक स्थिति और अवस्था से जुड़कर मनुष्य अपने विचारों मे भी बदलाव लाता गया। मनुष्य के बीच बढ़ती हुवी सामाजिक स्थितियों के अनुरूप आये अंतर्विरोधों को परसाईजी ने अपने व्यंग्य के द्वारा व्यक्त किया। अपने विचारधारा के भेद को सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और कई

जगहों पर व्यक्तिगत भूमिका पर व्यक्त किया । इसीलिये तो हम कह सकते हैं कि, परसाई जी ने समाज और व्यवस्था के अंतर्विरोधों को पकडने के लिए लड़ाई लड़ी है । ` वे व्यक्ति, समाज और समूचे राष्ट्र की भीतरी कक्षाओं में घुसते हैं और गुथी हुवी, उलझी हुवी, गाँठो-भरी व्यवस्था में विद्रूपों - विसंगतियों और विडंबनाओं को सामने लाते हैं । ` (१) इन्हीं विसंगतियों के आधारपर उनकी कहानियों का वर्गीकरण सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक , आर्थिक, प्रशासनिक तथा व्यक्तिगत व्यंग्य के रूपमें किया जा सकता है । परंतु यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि, यह वर्गीकरण बहुत ही स्थूल है । केवल अपनी सुविधा के लिये बनाया गया है ।

<u>सामाजिक व्यंग्य :</u>

प्रत्येक समाज में पायी जानेवाली विसंगतियाँ अलग अलग प्रकार की होती है। इन विसंगतियों के आधारपर निर्मित व्यंग्य समाज में व्याप्त कुरीतियों, रूढियों, असंगतियों, सामाजिक भ्रष्टाचार, मुनाफाखोरी जैसी समस्याओं की ओर संकेत करता है।

व्यंग्य तो परसाईजी की कहानियों का प्राण है। जीवन के सभी क्षेत्रों को उन्होंने अपनी कहानी का विषय बनाया है। 'सदाचार का तावीज' इस कहानी में भ्रष्टाचार के सर्वव्यापक रूप की एक छोटीसी झलक दिखायी देती है। राज्य में फैले भ्रष्टाचार से चिंतित राजा इस समस्या को सुलझाने के लिये दरबारियों से सलाह - मशविरा करता है। यह बात स्पष्ट रूपसे वह मानता है कि, आज के जमाने में भ्रष्टाचार ईश्वर के समान सर्वव्याप्त है। राज्य में फैला हुआ भ्रष्टाचार घूस के रूप में है। राजा बिना किसी उलट-फेर के भ्रष्टाचार को मिटाना चाहता है। इसी सिलसिले में एक साधु सदाचार का तावीज बनाता है, जिसे बाँधने से मनुष्य सदाचारी बन जाता है। इस तावीज की यह विशेषता है कि, 'मनुष्य की आत्मा की पुकार' के रूपमें बेईमानी के स्वर निकलते हैं, तो तावीज की शक्ति उन स्वरों को नष्ट कर देती है और आदमी सदाचार करता है। सभी कर्मचारियों की भुजाओं में तावीज बाँधे जाते है, ताकि राज्य से भ्रष्टाचार का पूरा निर्मूलन हो सके।

एक दिन राजा तावीज का असर देखने के उद्देश्य से एक कर्मचारी को ५ रूपये घूस देना चाहता है। पर कर्मचारी उसे लेने से इन्कार करता है। यह महीने के २ तारीख की बात है। राजा फिर एक बार महीने के आखरी दिन उसी कर्मचारी को ५ रूपयें का नोट देता है, तो वह कर्मचारी उसे ले लेता है। आश्चर्यचकित राजा उसकी भुजा में बंधा हुआ तावीज देखता है, जिसमें से आवाज आ रही है -' अरे, आज इकतीस है, आज तो ले ले।'

महीने के शुरू के दिनों में जो व्यक्ति भ्रष्टाचार के प्रति निषेध की भावना व्यक्त करता है, वही महीने के आखरी दिनों में आर्थिक तंगी के कारण भ्रष्टाचारी बनता है, घूस लेता है। अर्थात एक बदली हुवी स्थिति भ्रष्टाचार के लिये पोषक वातावरण तैयार करती है। परसा-ईजी ऐसी कहानियों के माध्यम से केवल ऊपरी सुधार की जगह, संपूर्ण व्यवस्था के बदलावपर जोर देते हैं। सदाचार का तावीज यह कहानी निश्चित रूपसे आर्थिक सुरक्षा के अभाव में भ्रष्टाचार विरोधक प्रयासों की असफलता की ओर संकेत करती है। लेखक ने कोई उपदेश देने का प्रयास नहीं किया है, केवल विरोधाभासों को सामने लाकर कुछ संकेत दिये हैं।

एक रचनाकार की पूँजी उसका अपना सामाजिक अनुभव होता है। जीवन के अनुभवों की विविधता से दृष्टि का विस्तार होता है और रचनाओं को विविध अर्थ मिलते हैं। समाज में स्थित मुनाफाखोरी की समस्या को एक निश्चित अर्थ देते समय परसाई ने `उखड़े खंभे` जैसी व्यंग्यकथा लिखी है। यह कथा उस एलान के संदर्भ में है, जो भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने मुनाफाखोरों के खिलाफ किया था।

कथा में वर्णित राज्य में राजाद्वारा मुनाफाखोरों को बिजली के खंभे से लटकाने की घोषणा की जाती है। परंतु एक को भी खंभेपर टाँगा नहीं गया। इस संदर्भ में पूछताछ करते समय लोगों को यह आश्वासन मिलता है कि, आज से सोलहवें दिन मुनाफाखोरों को जरूर सजा मिलेगी। परंतु उस रात सारे खंभे उखाड़ दिये जाते हैं और एक भी मुनाफाखोर को सजा नहीं मिलती। मुनाफाखोरों को दण्ड करने के लिये जो उपाय किये जाते हैं, वे प्राय असफल ही होते हैं, इस बात की ओर परसाईजी ने निर्देश किया है।

ठेके की स्थितियाँ उत्पन्न करना या दलालों की वृत्ति का

पोषण करता . मुनाफाखोरी की समस्या में पृष्ठ भूमि के रूपमें आते है। उनका निर्मूलन करना आवश्यक होता है। परंतु कोई ठोस उपाय नहीं किये जाते हैं। परिणाम स्वरूप मुनाफाखोरों को दंड देने के श्री नेहरू के हवाई साहस की, जो परिणति हुवी, वह इतिहास के तर्क को देखते हुवे स्वाभाविक ही लगती है।

मुनाफाखारों को फँासी देने के खंभे बड़े ऊँचे खर्च और समर्थ से बन जाते हैं, पर फँासी से पहली रात को उखाड दिये जाते हैं। क्योंकि विशेषज्ञों के अनुसार ठीक उसी रात को बहुत तेज विद्युत धारा धरती के नीचे से बहेगी, जिससे पूरे नगर का जीवन संकट में आ सकता है। लोग खुश है कि, उनकी जान बच गयी और मुनाफाखोर आनंदित है कि, उन्हें कोई सजा भुगतनी नहीं पड़ी। इसी सप्ताह जितनी बड़ी रकम सेक्रेटरी, इंजिनियर, विशेषज्ञ और ओवरसियर के पत्नियों के नामपर जमा होती है। मुनाफाखोर संघ के हिसाब से ठीक उतनी ही रक्कम धर्मादाय खाते के विविध मदों में डाल दी जाती है, अर्थात् समस्या वैसी की वैसी रह जाती है। आधुनिक काल में विशेष महत्वपूर्ण बनी हुवी विशेषज्ञों की जमात की ओर परसाईजी ने संकेत किया है।

भारतीय समाज में अतिशय विकृत रूपमें पायी जानेवाली दहेज प्रथा का वर्णन करते हुवे लडकेवालों की काटू प्रवृत्ति की ओर भी परसाईजी ने संकेत किया है, जिसे एक भयंकर सामाजिक समस्या के रूपमें ग्रहण किया जा सकता है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण है ' मन्नू भैयाकी बारात '। बारात में शामिल होने के लिये जेब काटने की कला आवश्यक है, यह परसाईजी की कही बात आज के जमाने में सौ फीसदी सही लगती है। वस्तुत: बारातियों मे प्रतिष्ठित सज्जन लोग होते है लेकिन मन्नू की बारात में शामिल होनेवालों में जेबकतरें, चोर, डाकू तथा पागल ही ज्यादा है।

बारातियों के आगमन से खुशी और उल्लास का वातावरण उत्पन्न होना चाहिए। पर यहाँ बारातियों के आने से भगदड़ तथा शोरगुल मच जाता है। गले मिलने के बहाने से बाराती घरातियों के जेब साफ करते हैं, नाश्ते को नापसंद कर उसे गिराते हैं, गिलास, बल्ब, कुरसियाँ तोड़ी जाती हैं, रात में वधू के घर का सोना तथा पैसा लूटा जाता है। इसप्रकार लड़की के पिता को 'विदेह' बना दिया जाता है। स्त्रियों की छेड़छाड़ करते हुये घरातियों को जितना हो सके सताया जाता है।

बारातियों के वापस लौटते लौटते वधू पिता की मृत्यु का समाचार मिलना, शादी सफल होने का एकमात्र संकेत लगता है। शादी-ब्याह तो आनंद के, खुशी के अवसर होते है, पर आजकल बारातियों की लुटारू प्रवृत्ति के कारण सारा मजा किरकिरा हो जाता है। लड़केवाले लड़कीवालों को जितना हो सकें, लूट लेते हैं। समाज में पनप रही इसी प्रवृत्ति की ओर परसाईजी ने संकेत किया है। परंतु इस प्रवृत्ति की अतिशयता कहानी के अंत में अर्थहीन बनकर रह जाती है।

बारात के लिये जरूरी सामान की सूची में 'दो चोर और दो डाकू भी चाहिए। मैंने अपने दोस्त दरोगा श्याम सिंह से कह दिया है, वे प्रबंध कर देंगे।'- इस बात का उल्लेख करते हुये लेखक ने बहुत ही सहज ढंग से हमारी जनतांत्रिक व्यवस्था में पुलिस के चरित्र और भूमिका की ओर निर्देश किया है।

मानवीय करूणा और मानवीय कल्याण के गंभीर गहरे और व्यापक अहसास की अंतर्धारा के उल्लेख के रूपमें 'मन्नू भैयाकी बारात' का उदाहरण देना अधिक ठीक रहेगा। इस व्यंग्यकथा के ऊपरी कलेवर में यद्यपि बारातियों का उचक्कापन देखने मिलता है, साथ में कन्या के पिता की मृत्युपर करूणा भी उत्पन्न होती है। भारतीय परिवारों में

विवाह एक महान उल्लास का समय होता है, पर कन्या का पिता विशेषत: अभागा रहता है। इस बात का गहरा अहसास प्रस्तुत कथा कराती है।

इसीप्रकार की एक और कहानी 'इंस्पेक्टर मातादीन चाँदपर' का उल्लेख किया जा सकता है। इस कथा में लेखक ने पुलिस की ज्यादतियों की ओर देश की जनता का ध्यान आकर्षित किया है। फेंटेसी की शैली में लिखी गयी यह कथा सतही जरूर है, फिर भी उसका महत्त्व कम नहीं है।

इन कहानियों के माध्यम से परसाई इस बात का अहसास कराने में सफल बने है कि, देश की जनता कितने भयानक संत्रास में जी रही है। यदि हम में थोडी सी भी मानवीय संवेदना है, तो समाज की यह स्थिति हमारे हृदय को निश्चित रूपसे हिला देगी।

इसी प्रकार की एक और समस्या का परसाई ने संकेत किया है। जातिकी प्रतिष्ठा को सामाजिक प्रतिष्ठा मानकर उसमें कोई बाधा उपस्थित न हो जाये, इसलिये हम सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। पर इसमें हमारा नैतिक अध:पतन हो जाता है, इस बात का जरा भी ख्याल हमें नहीं होता।

प्राचीन काल में निर्मित वर्णव्यवस्था का विकृत रूप जाति के नियमों के रूपमें पाया जाता है। पर आज जाति के नियम असह्य नहीं रहे। जमाना बदल गया, जाति-जातियों के बीच के अधिक संपर्क ने आंतरजातीय विवाह के लिये पोषक वातावरण निर्माण हो गया। परंतु इस वातावरण का प्रभाव केवल युवा पीढ़ीपर ही रहा। बुजुर्ग लोग अब भी जाति और जाति प्रतिष्ठा को ही श्रेष्ठ मानकर चलना चाहते हैं। यह बात स्पष्ट करते समय परसाईजी ने किसी औद्योगिक बस्ती में रहनेवाले ठाकुरसाहब

के लड़के और पंडितजी की लड़की के प्रेम का उल्लेख किया है। दोनों शादी करना चाहते है, पर दोनों के पिता इस बात के लिये तैयार नहीं है। शादी न होने से यदि वे व्यभिचारी बनें तो भीउन्हें चलता है, पर जाति की प्रतिष्ठा को वे जरा भी कम नहीं होने देना चाहते।

(2) 'व्यभिचार से जाति नहीं जाती, शादी से जाति जाती है।' इसीप्रकार के उल्लेख से यही तथ्य हमारे सामने आता है कि, नैतिक अध:पतन या व्यभिचार की बातें हमें महत्व की नहीं लगती, जाति की इज्जत अधिक महत्व-पूर्ण लगती है।

सामाजिक विसंगतियों के प्रति गहरी आस्था रखनेवाला कोई व्यंग्य लेखक ही व्यंग्य की जमीनपर उतरता है। स्थितियों, व्यक्तियों और प्रवृत्तियों पर व्यंग्य कर के वह सामाजिक विसंगतियों के प्रति अपना गुस्सा व्यक्त करता है। अपने लेखन को एक नैतिक हस्तक्षेप के रूपमें इस्तेमाल करते समय शायद परसाई ने "प्रेमियों की वापसी" यह कहानी लिखी होगी। इहलोक का बंधनोंसे युक्त जीवन और परलोक का मुक्त जीवन चित्रित करते हुये लेखक ने इस बात को हमारे सामने स्पष्ट किया है कि, पृथ्वीपर रहनेवाले दो असफल प्रेमी आत्महत्या करते हैं और स्वर्ग में, जबकि मुक्त वातावरण है, एक दूसरे पर विश्वास नहीं करते। पर यहाँ तो आत्महत्या नहीं की जा सकती। स्वर्गकी स्वतंत्रता दोनों को भी रास नहीं आती और वे वापस पृथ्वीपर लौटने की बात निश्चित करते है। परंतु विधाता उन्हें खरी खरी सुनाता है कि, अब तो मनुष्य बनने का अधिकार उन्होंने खोया है। प्रेम ही जीने का एकमेव आधार होता है। इसी प्रेम में जो जीने की अपेक्षा मरते है, उनमें प्रेम का निर्वाह करने की हिंमत नहीं होती है। इसलिये विधाता कहता है - 'तुम दुबारा इस झंझट में मत पडो। कोई और जीवधारी बनो, जो मनुष्य की तरह प्रेम करने को बाध्य नहीं है। बोलो, कौन जानवर बनना

चाहते हो ।"(३)

तात्पर्य अपने आप को श्रेष्ठ माननेवाला मनुष्य आखिर जानवरों से भी गया-गुजरा है, इसका संकेत मिलता है। प्रस्तुत व्यंग्य कथा के माध्यम से परसाईंजी ने एक और तथ्य हमारे सामने लाया है कि, स्वभाषा के प्रति अभिमान रखने तथा उसे संवर्धित करने के बजाय अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा के प्रति विशेष श्रध्दा का भाव रखनेवाले व्यक्तियों पर भी तीखा व्यंग्य किया है। यह व्यक्ति हिंदी जैसी भाषा को अपनानेवाले देश में मरना तक नहीं चाहता। इसलिये लंदन में जाकर टेम्स नदी में कूदकर आत्महत्या करता है। इस प्रकार की राष्ट्रद्रोही प्रवृत्ति की भी परसाई ने कड़ी आलोचना की है।

सामाजिक कार्यकर्ताओं में तथा विविध प्रकार के आंदोलनों के समर्थकों में यह प्रवृत्ति फैलती जा रही है कि, बड़े जोश में आकर भाषण तो दिये जाते, पर घर में उसप्रकार की कोई बात नहीं चलती। ऐसे ही एक नारी आंदोलन के समर्थक की कहानी में 'अंदर एक बाहर एक' वाली प्रवृत्तिपर परसाईंजी ने 'उपदेश' में तीखा व्यंग्य किया है।

सेवकजी नारी आंदोलन के समर्थक के नाते नारी की सामाजिक स्वतंत्रता के लिये बहुत कुछ प्रयत्न करते थे। नारी को घर से बाहर निकलकर समाज के मंगल कार्यों में सहभागी होने का आवाहन करते थे। पर घर में पहुँचकर जब वे देखते है कि, उनकी पत्नी नारी मंगल समिति के कार्यक्रम में भाग लेना चाहती है, तो सेवकजी क्रोधित होते है।

इस व्यंग्यकथा के जरिये परसाईंजी ने तथाकथित कार्यकर्ताओं की कथनी और करनी में जो अंतर है, उसे व्यक्त किया है। मंच पर तो बड़ी बड़ी बातें की जाती है, पर उसकी शुरूवात अपने घरों से नहीं की जाती, यह खेद की बात है। समाज के लोगों में पनपते हुवे दुमुँहेपन की ओर संकेत किया है।

आज समाज में यह फॅशन ही चल पड़ा है कि, अपनी मामूली सी बात मनवाने के लिये अनशन किया जाता है, चाहे वह काम अनैतिक ही क्यों न हो ? हमारे देश में सत्य का, नैतिकता का आग्रह घरने-वाले लोगों की तथा उसकी प्राप्ति के लिये स्वीकार किये उपायोंकी एक परंपरा देखने को मिलती है। प्राणांतिक अनशन से ही कुछ समस्याएँ सुलझती हुयी दिखायी देती हैं। पर आज नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन हो गया है। अनैतिकताके लिये अनशन किया जाने लगा है। इस बात को "दस दिनका अनशन" इस कहानीके माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास परसाईजी ने किया है।

कथा का बन्नू एक सौभाग्यवती से अर्थात् राधिकाबाबू की पत्नी सावित्री से प्यार करता है। पर सावित्री उससे नफरत करती है। परिणामत: एक बार बन्नू को मार भी खानी पड़ी थी। बन्नू ने फिर भी सावित्री का पीछा नहीं छोड़ा। मित्रों ने यह सलाह दी कि, जैसे अनेक प्रकार की माँगें अनशन या आत्मदाह की धमकी देकर पूरी की जाती है, उसीप्रकार तू भी सावित्री के लिये अनशन कर। बाबा सनकीदास के निर्देशन में बन्नू आमरणअनशन पर बैठ गया। सनकीदास इस क्षेत्र के विशेषज्ञ थे। उनकी नीति का सही परिणाम निकलने लगा। पूरी राजनीति में खलबली मच गयी। अंतत: सैध्दांतिक रूपमें बन्नू की माँग स्वीकार की गयी, व्यावहारिक समस्याओं को सुलझानेके लिये एक कमेटी नियुक्त की गयी। हिंसक क्रांतिका डर मिट गया और बन्नू की समस्या शांतिपूर्ण मार्गों से सुलझ गयी।

आज समाज में नैतिक मूल्यों की गिरावट होती दिखायी दे रही है। हमारे सामने ऐसा कोई आदर्श नहीं बचा कि, जिस सत्य के आग्रह के लिये हम अनशन करें। इसलिये अनैतिक माँगों की पूर्ति के लिये भी हम अनशन करते हैं। सारी जनता ऐसे लोगों के पीछे खड़ी

होती है। अनैतिकता की विजय होती है, इस बातका संकेत देते समय परसाई ने व्यंग्यात्मकता का सहारा लिया है।

फिल्में देखना और उस प्रकार की पोशाक पहनकर उनकी नकल उतारना आजकल एक फॅशन बन गया है। लोगों के वास्तविक जीवन में भी फिल्मीपन आ गया है। प्रेम मनुष्य के मन की अतिकोमल और सहज भावना है, परंतु जैसे ही उसपर फिल्मों का प्रभाव सवार होता है, उसमें कृत्रिमता आ जाती है।

`एक फिल्म कथा` में प्रेमका त्रिकोण चित्रित किया है, जिसके तीन सिरोंपर रंजना, राकेश और सुरेंद्रसिंह है। रंजना और राकेश के प्यार में सुरेंद्रसिंह बाधा बनकर खड़ा है। वह रंजना की लाचारी तथा मजबूरी का फायदा उठाकर उससे शादी करना चाहता है। परंतु किसी स्त्री द्वारा सुरेंद्रसिंह की हत्या होती है और रंजना तथा राकेश का जीवन सुखी बनता है। यह फिल्मकथा का सारांश है।

चाहे सुख हो, या दुख हो फिल्मों में तो गाने गाये जाते ही है। प्रेम में नितांत श्रध्दा, आदर और त्याग की भावना होनी चाहिए, पर प्राय: फिल्मी प्रेम में उथलापन तथा दिखावटीपन ही अधिक दिखायी देता है।

यह एक महत्वपूर्ण व्यंग्यकथा है, जो फिल्मी कथानक के रूपमें अभिकल्पित है। इस कहानी में फिल्मी कथानक के संबंध में सारे छोटे बड़े और नुस्खों की कुंजी मिल जाती है कि, फिर कोई आधुनिक फिल्म देखने की जरूरत ही नहीं रह जाती।

परसाईजी की `त्रिशंकु` कहानी पौराणिक आख्यानपर आधारित है। त्रिशंकु को ऋषि विश्वामित्र ने सदेह स्वर्ग भेजा था, पर देवों ने उसे वहाँ रहने नहीं दिया। परिणामत: त्रिशंकु बीच में ही लटक

रहा है। इसी आख्यान का संदर्भ लेकर आज के युग में त्रिशंकु बने एक बेचारे अध्यापक की कहानी कही गई है।

कहानी में इस बात का वर्णन मिलता है कि, एक निम्न-वर्गीय अध्यापक को अच्छे मकान के लोभ में मकान से बाहर निकालकर कैसे लावारिस छोड़ दिया जाता है। यह एक व्यवसायी तथा सहकारी अधिकारी के षड्यंत्र का परिणाम है। पूँजीवादी शासनतंत्र प्राय: व्यापारियों के सहयोग से ही संचलित होता है।

व्यवसायी उस आदमी को ही मकान देते हैं, जिसने विला-सिता के सारे साधन जुटाये है। अध्यापक के पास इन साधनों का पूर्ण अभाव है। परिणाम यह होता है कि, घरद्वारहीन निम्नमध्यवर्गीय अध्यापक त्रिशंकु की तरह न इधर का रहता है, न उधर का, बल्कि बीच में ही लटका रहता है। परसाईजी ने इसका कारण बतलाते हुये कहा है कि, उसका वर्ग इन दोनों से अलग है।

अफसरशाहीके भ्रष्टाचार ने समाज व्यवस्था में और भी अधिक अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न कर दी है, इस बात का संकेत परसाईजी ने `त्रिशंकु` कहानी के माध्यम से दिया है। इसीलिये तो उसे अलग वर्ग का आदमी मानकर एक ने उसे घर से निकाल दिया है और दूसरा उसे घर देने के लिये तैयार नहीं है।

शिक्षा क्षेत्र समाज का ही एक महत्वपूर्ण अंग है। इस क्षेत्र में भी बहुत अधिक भ्रष्टाचार देखने को मिलता है। इस भ्रष्टाचार को स्पष्ट करनेवाली `एकलव्यने अँगूठा दिखाया` तथा `अपने अपने इष्ट देव` ये दो कहानियाँ विशेष प्रभावी हैं।

गुरू शिष्य का नाता तो प्राचीन काल से आदर्श माना जाता

है और इसके लिये गुरु द्रोणाचार्य और एकलव्य की मिसाल बड़े गर्व के साथ दी जाती है। लेकिन आधुनिक युग में इसके अर्थ बदल गये है। "एकलव्य ने गुरु को अँगूठा दिखाया" कथा के प्राध्यापक एक विश्वविद्यालय में रीड़र के पदपर कार्य करते है। उनका एक शिष्य अर्जुनदास जो धनिक बाप का बेटा है और दुसरा शिष्य एकलव्य जो बिलकुल गरीब। दोनों शिष्य एम.ए. की तैयारी कर रहे हैं। अर्जुन गुरु की कृपा से एम्.ए. पास करना चाहता है और एकलव्य अपने अध्ययन से। ऐसी स्थिति में निर्जीव ग्रंथों में डूबनेवाला एकलव्य गुरु द्रोणाचार्य को बिलकुल अच्छा नहीं लगता। गुरु द्रोणाचार्य एकलव्य से गुरुदक्षिणा माँगते हैं। इस बात के लिये एकलव्य तुरंत तैयार होता है। क्योंकि उसने पहले से ही यह जान लिया था कि, गुरु अँगूठा माँगेगें और इसलिए उसने दोनों हाथों से लिखने का अभ्यास किया था। ऐसी स्थिति में गुरु द्रोणाचार्य का उद्देश्य तभी पूर्ण हो सकता था, जब एकलव्य के दोनों अँगूठे काट दिये जाय। पर ऐसी तो कोई प्राचीन परंपरा नहीं है। गुरु द्रोणाचार्य की सारी उम्मीद इस बातपर रहती है कि, वे अर्जुनदास को सौ में से निन्यान्नवे अंक दें, जिसके कारण अर्जुनदास एकलव्य से आगे रहेगा। परंतु उनकी इस उम्मीदपर भी पानी फिर जाता है। परिणामस्वरूप गुरु द्रोणाचार्य अपने शिष्य अर्जुनदास के लिये कुछ भी न कर सकें।

प्राचीन काल के एकलव्य ने गुरुदक्षिणा के रूपमें गुरु को अँगूठा दिया था तो आज के युग के एकलव्य ने गुरु को अँगूठा दिखाया। युग के संदर्भ में गुरु और शिष्य दोनों भी अपने स्थान से भ्रष्ट हो गये है। आज के गुरु तथा शिष्यों के व्यवहारपर तीखा व्यंग्य करना ही परसाईजी का उद्देश्य है।

परसाई अपने लेखन को एक सामाजिक कर्म मानते है। बिना

सामाजिक अनुभव के सच्चा और वास्तविक साहित्य लिखा नहीं जा सकता। इसी मान्यता के उजाले में परसाई को इस बात का एहसास हो गया कि, आज शिक्षा जगत भी भ्रष्टाचार का अड्डा बन गया है। अपने पुस्तक को पाठ्यक्रम में लाने के लिये किसप्रकार अपने इष्टदेव की पुजा की जाती है, इसबात को, अपने अपने इष्ट देव, कहानी में देखा जा सकता है।

इस कथा में भी लेखकने प्राचीन कथा को ही संदर्भ लिया है। तुलसीदास और उनके इष्टदेव हनुमान का उल्लेख किया है। बलशाली हनुमान जैसे इष्टदेव पाकर तुलसीदास महान हो गये और उनका ग्रंथ रामचरितमानस घर-घर में पहुँचा। पर आज तो कृमिक पुस्तकों का निर्माण कर महान बनने की चेष्टा की जाती है। अपनी पुस्तक घर-घर पहुंचने के लिये और बच्चे-बच्चे की जुबानपर अपना नाम हो इसलिये शिक्षा विभाग के पदाधिकारी को इष्टदेव बनाया जाता है और उसकी सहायता से अपनी इच्छाएँ पूरी की जाती है।

हृदयपरिवर्तन करना गाँधीवाद का महत्वपूर्ण सिध्दांत है। इसी सिध्दांतपर तीखा प्रहार करते हुये परसाईजी ने `वैताल कथाएँ` लिखी है।

व्यक्ति अपनी उन्नति के लिये अपने दाँत भी उखड़वाने के लिये तैयार होता है। धर्म के आचार्यों के मानस में हमेशा शैतान घुसा रहता है। ये बातें परसाईजी ने `बैताल की छब्बीसवीं` कथा में व्यंग्य से कही है।

जनता को बहलाने के लिये राजकीय नेताओं, मंत्रियों और अफसरों के पास धर्म, दर्शन और नीति के सिध्दांत हैं, अच्छे से अच्छे प्रस्ताव तथा नारे हैं।

'बैताल की सत्ताईसवीं' कथा में डाकुओं की समस्या को वर्णित किया है, जो समाज ने ही पैदा की है। यह खेद की बात है कि, हमारी शासन व्यवस्था डाकुओं को पराजित करने में बिल्कुल सक्षम नहीं है। अंत में संत महोदय को हृदय-परिवर्तन का नुस्खा याद आता है। भैया साब डाकू का हृदय बदलकर डाकू का हृदय अपने पास रख लेते हैं और हृदय खोया हुआ डाकू किसी सेठ के बच्चों को खिलाने की नौकरी कर लेता है। अर्थात राजनीतिक भैयासाब डाकू को ही खरीद लेते हैं,-इस बात का संकेत इस व्यंग्यकथा के माध्यम से दिया है।

'बैताल की अट्ठाईसवीं' कथा में भी परसाईजी एक व्यवसायी के द्वारा घूस देकर नेकदिल आदमी का हृदय बदलने की बात कहते हैं और कालाबाजारी के मुकद्दमों में उसकी जीत हो जाती है।

धार्मिक व्यंग्य :

प्राचीन काल से हम देखते आये हैं कि, धर्म हमारी भारतीय संस्कृति का प्राण है। धर्म की रक्षा के लिये किये गये प्रयत्नों की गिनती इतिहास के संदर्भों के आधारपर हम कर सकते हैं। परंतु आज धर्म के नामपर कितनीही अनैतिक हरकतें तथा क्रिया कर्म किये जाते हैं, जिससे धर्म का विकृत रूप हमारे सामने आ रहा है। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये धर्म का सहारा लिया जाता है। ऐसी स्थिति में उत्पन्न धार्मिक विसंगतियों को परसाई जी ने अपनी व्यंग्य कहानियों के माध्यम से व्यक्त किया हैं।

ईश्वर भक्ति का ढोंग रचनेवाले भगत की मृत्युपरांत कैसी दुर्दशा होती है, इसका व्यंग्यात्मक वर्णन लेखक ने `भगतकी गत` कहानी में किया है। चौबिसों घंटे लाऊड स्पीकर पर ईश्वर का भजन, कीर्तन करनेवाले भगतजी को स्वर्ग की प्राप्ति होनी चाहिए। परंतु असलियत यह है कि, भगतजी को नरक में भेजा गया, जहाँ से छूटने की जरा सी भी आशा नहीं थी। उनपर इतने गंभीर आरोप लाये थे कि, केवल भगवान ही उसका फैसला कर सकते थे। इस सिलसिले में हम देखते हैं कि, सच्चे, श्रध्दालु भगत के प्रति भगवान के मन में विश्वास नहीं है। लाऊड स्पीकर पर भजन करनेवाला भगत बिकाऊ माल की तरह भगवान का विज्ञापन करता है, मुहल्ले के लोगों का सुखचैन छीनकर भगवान को बदनाम करता है, कितनेही बीमारों को मार डालता है, पढ़ाई ठीक ढंग से न होने के कारण कितने ही युवकों ने आत्महत्या कर डाली। अर्थात भगतजी के लाऊड स्पीकरपर भजन करने से लोगों को इतनी सारी हानि पहुंची है। इसीलिये तो भगतजी एक धर्मात्मा के रूपमें नजर नहीं आते, बल्कि एक हत्यारे के समान लगते है। इसलिये भगतजी को नरक में भेजा गया। ईश्वरभक्ति में मन की एकाग्रता, सच्ची लगन तथा शांति का होना बहुत

जरूरी है। परंतु कहानी में वर्णित वातावरण से पता चलता है कि, ईश्वरभक्ति के लिये जो मार्ग अपनाया गया है, उससे सभी ओर अशांति, बेचैनी ही फैल गयी है। अर्थात भगतजी सच्चे ईश्वरभक्त नहीं है, क्योंकि उन्होंने भक्ति के पवित्र क्षेत्र में पाखंडका प्रचार किया, इसीलिये उनको ऐसी दुर्गत हुई।

परसाईजी ने 'भगतकी गत' में लाऊडस्पीकर पर पूजा और कथा को एक सामाजिक समस्या के रूपमें वर्णित किया है। भगत और भगवान जैसी संज्ञाएँ धार्मिकता से संबंधित होती है, इसीलिये इस कहानी का उल्लेख धार्मिक व्यंग्य के अंतर्गत किया जा सकता है। वैसे तो कहानी स्थूल लगती है, पर यह बात बिलकुल सही लगती है कि, पूरी कहानी में पिरोये हुये चुस्त जुमलों के आधारपर लेखक सामाजिक विसंगति की ओर संकेत करते हैं और उसकी मार बहुत ही गहरी और दूरतक छीलनेवाली होती है।

परसाईजी ने व्यंग्य में 'विसंगति की अहमियत' को स्वीकार किया है। इसीलिये तो वे किसी न किसी प्रकार की विसंगति सामने लेकर ही दम लेते हैं। ढोंग तथा पाखंड का सहारा लेकर साधु बने तथा लोगों को फँसाकर अपना स्वार्थ साधनेवालों की हमारे यहाँ पुरानी परंपरा है। इसी परंपरा को तथा उसके प्रभाव को परसाईजी ने 'टॉर्च बेचनेवाले' इस कथा के माध्यम से स्पष्ट किया है।

कहानी के दो मित्र, जिनके सामने पेट भरने की बहुत बड़ी समस्या है, पाँच साल बाद फिर मिलने का वादा करते हुये अलग अलग दिशाओं में चल पड़ते हैं। पाँच साल बाद दोनों में से एक ही निश्चित स्थानपर पहुँचता है। दूसरे का कोई पता नहीं है। मित्र को ढूँढने के प्रयास में वह एक साधु को पाता है, जो काफी ऐश्वर्यसंपन्न जीवन बिता

रहा है। उसके व्यवसाय के संदर्भ में यह जानकारी मिलती है कि, वह सूक्ष्मता और अध्यात्म का टॉर्च बेचता है।

कथा के विकास में हम देखते हैं कि, दो मित्रों में से एक 'सूरजछाप' टॉर्च बेचता है तो दूसरा 'अध्यात्म का'। वह अपने व्यवसाय में काफी कुछ पा भी जाता है। इसीलिये कहता है -

'उस टॉर्च को कोई दुकान बाजार में नहीं है। वह बहुत सूक्ष्म है। मगर कीमत उसकी बहुत मिल जाती है। तू एक-दो दिन रह तो मैं तुझे सब समझा देता हूँ।'(४)

कथा के अंत में इस बात का उल्लेख मिलता है कि, कथानायक 'सूरजछाप' टॉर्च की पेटी नदी में फेंक देता है। निश्चय करता है कि, अब भी वह टॉर्च ही बेचेगा। केवल कंपनी बदल लेगा। इस दरम्यान एक तथ्य हमारे सामने आता है कि, एक साधारण आदमी, नेकी से व्यवसाय करके कुछ हासिल नहीं कर सकता, पर 'सनातन' धंधा करने से बहुत कुछ प्राप्त कर सकता है।

'टॉर्च बेचनेवाले' कथा के माध्यम से सूक्ष्मता और अध्यात्म का टॉर्च बेचनेवाली कंपनीपर प्रहार करने की लेखक की सहज, साहसिक और मानवीय इच्छा है। परसाईजी के मन में सूक्ष्मतावादी महंतों के खिलाफ जो आत्मपरक गुस्सा है और करुणा है, वहीं इस कहानी में व्यक्त हो गयी है। कहानी में वर्णित दो टॉर्च बेचनेवालों में से एक अपने को बचाने की लड़ाई लड़ता हुआ एक साधारण इन्सान है और दूसरा एक बड़ी कंपनी का टॉर्च बेच रहा है, उजाले का व्यापार कर रहा है। दूसरे का पहलेपर इतना प्रभाव है कि, वह अपना स्थूल व्यवसाय छोड़कर सूक्ष्म व्यवसाय की ओर अग्रेसर होता है। इस सिलसिले में पुरानी परंपरा को कायम रखते हुये उसे आगे भी चलाने का प्रयास किया हुआ

दिखायी देता है।

गणेशोत्सव जैसी प्रथाएँ समाज में इसलिये चलायी गयी कि, अलग अलग जाति-धर्मों के लोगों में एकता बनी रहे। लो.तिलकजी ने इसी एकता के प्रसार के लिये गणेशोत्सव के परंपरा की नींव डाली थी। पर खेद तो इस बात का है कि, इस परंपरा से सही एकता तो नहीं हो सकी, बल्कि वह आपसी झगड़े का कारण बन गयी। इसीलिये तो आज जातीय अलगाववाद ही अधिकता से देखने को मिलता है। यह हमारी संकुचित दृष्टि का ही परिणाम है। सांप्रदायिक दायरे से बाहर निकलकर राष्ट्रीय एकता के निर्माण में हमें सहयोग देना है। इसी कर्तव्य की प्रेरणा देने का प्रयास परसाई ने `देवभक्ति` कथा में किया है।

प्रत्येक गाँव और शहरमें गणेशोत्सव में अलग अलग जाति-धर्मियों के द्वारा अलग अलग गणेश मूर्तियों की प्रतिष्ठापना की जाती है। ब्राह्मण अपनाही गणेश सबसे आगे निकालने की बातपर हमेशा अड़े रहते थे। आज भी वर्ण व्यवस्था की सोपान परंपरा में ब्राह्मणोंका श्रेष्ठत्व, उनका प्रभाव कम होता हुआ नहीं दिखाई देता है और जब श्रेष्ठता - कनिष्ठताका भाव रहता है, तो एकताके स्थानपर अलगाव ही दिखायी देता है। गणेशोत्सव एकता का नहीं, अलगाव वाद का प्रतीक बन गया है। राष्ट्रीय एकताके नारे आज बिल्कुल खोखले बनकर रह गये हैं, इस बात का संकेत `देवभक्ति` कहानी से मिलता है।

परसाँई केवल राजनीति या समाज में स्थित विसंगतियों को व्यक्त करना अपना उद्देश्य नहीं मानते। इसके भी आगे चलकर धार्मिक क्षेत्र की विसंगतियों को उद्घृत करने का बीड़ा भी उन्होंने उठाया है। `मौलाना का लड़का पादरी की लड़की` इस व्यंग्य कथा में धार्मिक शोषकों और उन्हींकी दो पीढ़ियों के बीच के अंतर को स्पष्ट किया है।

लेखक इस बात से अच्छीतरह परिचित है कि, धर्म धन के हिसाब में टीम-टाम धारण कर लेता है। शायद इसी स्थिति से प्रेरित होकर एक मौलाना ने आर्थिक कारणों से अपना घर चर्च के लिये किरायेपर दिया था। यह धार्मिक रूपसे शोषण करने का आपसी समझौता ही है। मौलाना का लड़का और पादरी की लड़की में प्रेम हो जाता है। रफिक और बेला का यह आध्यात्मिक प्रेम है। दोनों शादी करना चाहते हैं। मौलाना और पादरी दोनों का बच्चों के प्रेम विवाह के लिये विरोध नहीं है, पर इस बात का आग्रह है कि, अपने अपने धर्म में बाकायदा मत-परिवर्तन कर कुछ पुण्य हासिल करें। अर्थात पुरानी पीढ़ी की रूचि इस बात में है कि, कौन किस के मजहब में शामिल हो।

बच्चों को आध्यात्मिकता से भौतिक आवश्यकताओं की ओर बढ़नेवाला अनुशासन जब उनके पिताओं के अनुशासन से टकराने लगता है, तो बहुत कुछ विचार के बाद बच्चे जो रास्ता तय करते है वह है - सिविल मॅरिज का।

इस कथा के माध्यम से एक ऐसी स्थिति को हम देखते है, जिसमें युवा पीढ़ी जाति-धर्म के बंधनों को लगातार तोड़ती जा रही है, परंतु रूढ़िवादी धार्मिक शोषक इस बात को नहीं स्वीकारते। परिस्थितियों को बिना जाने ही बच्चों के पिता अलग अलग अपने प्रभुवों से उन नादानों को माफ कर के सही रास्ता दिखाने की प्रार्थना करते हैं। दोनों की प्रार्थना का असर एक ही होता है - 'दोनों के अलग अलग प्रभुओं ने उनकी संतानों को सही रास्ता दिखाया - उस रास्ते का नाम था, अल्बर्ट रोड, जिसके छोरपर सिविल मॅरिज के रजिस्ट्रार का दफ्तर था।' (५)

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

समाज में दिखायी देनेवाले साईं, रजनीश, जयगुरूदेव, और महेश जैसे कितने ही छद्म-कपटी साधु-संन्यासियों और ब्रम्हचारियों की वास्तविकता को 'राग-विराग' कहानी में प्रस्तुत किया है। ये साधु-संन्यासी बेहद निर्विकार रूपसे जनता की सहानुभूति पाते हैं और जनता का शोषण भी करते हैं।

दुनिया के सामने जितना हो सकें, उतने पवित्र रूपमें अपने आप को पेश करते हैं, परंतु अंदर से उतने ही दूषित होते हैं। अपनी कुप्रवृत्ति के कारण जिस स्त्री को देवी कहकर पुकारते है, उसके प्रति इनकी नियति अच्छी नहीं होती। परसाईजी ने यह बात कहने का विशेष प्रयास किया है कि, धर्म की आड़ लेकर किये जानेवाले सामाजिक पतन में ऐसे लोग ही अधिक दोषी होते हैं।

समाज में धर्म के नामपर पाखंड पनप रहा है। ऐसी स्थिति में परसाईजी ने गीता-पाठियों और साधु संतोंपर करारी चोट करने का काम 'राग-विराग' इस कथा के माध्यम से किया है।

'पाठकजी का केस' व्यंग्यकथा में परसाईजी ने पाठकजी का रेखाचित्र खींचा है, जो अपने केस के लिये सुबह शाम दो घँटे पुजा करते हैं, ईश्वर का अनुष्ठान करते है। चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाये, पर उनके पुजा पाठ में कोई बाधा निर्माण नहीं होती। परंतु जैसे ही दफ्तर के साहब का बुलावा आता है, तो वे पुजा बीच में ही छोड़कर उठते है। पत्नी अपनी ओर से कमजोर कैफियत देने का प्रयत्न करती है। परंतु पाठकजी कहते है, केस भगवान के पास नहीं, साहब के पास है और वे अफसर से मिलने के लिये चलते हैं।

यहाँपर परसाईजी हमें यह संकेत देते है कि, एक साधारण कर्मचारी का सामाजिक यथार्थ उसका ऑफीस, ऑफिस के कानून और

उसका अफसर ही होता है। व्यवस्था के इस हिस्से को वह शक्तिशाली मानता है और उसके सामने अपने आप को बहुत ही कमजोर। पाठकजी भगवान को सबसे अधिक शक्तिशाली मानते हैं और उनकी भक्ति के सामने अपनी पत्नी तथा अन्य सभी साधारण लोगों की ओर ध्यानतक नहीं देते। इसका कारण यह है कि, जो अधिक शक्तिशाली है, उसे पाठकजी नाराज नहीं करना चाहते हैं।

पाठकजी अपने वास्तविक जीवन में अफसरों को सर्वशक्तिमान मानते हैं, जो किसी से भी नहीं हारते। अफसरों ने इस बात को अच्छी तरह से जान लिया है कि, ब्राह्मणों की आह भी उनका कुछ नहीं बिगाड सकती है। इसलिये वे उन्हें डाँटते, फटकारते है, दंडित करते हैं।

भौतिक जगत के इस वस्तुगत सत्य के सामने पाठकजी अपने भगवान को भी असहाय मानते है। अर्थात अफसर भगवान से भी अधिक शक्तिशाली है। इसलिये उनके सामने ईश्वरभक्ति कोई महत्व नहीं रखती। यहाँपर हम देखते हैं कि, ऑफिस के वस्तुगत सत्य के सामने पाठकजी का आध्यात्मिक सत्य हार जाता है। 'जगत मिथ्या नहीं, सत्य है।'-यह बात अतिशय व्यंग्यात्मक रूपमें परसाई ने पाठकजी के अनुभवों के आधारपर कहने का साहस दिखाया है।

दूसरी ओर पाठकजी की पत्नी की ओर संकेत करते हुये परसाईजी कहते हैं कि, उनको पत्नी का यथार्थ ऑफिस नहीं, परिवार में पती-पत्नी के संबंधों का सत्य उसका यथार्थ है। इसलिये तो ऑफिस के सत्य के सामने उसका आध्यात्मिक सत्य नहीं टूटता और वह ऑफिस जानेवाले पाठकजी को टोक देती है। पर पारिवारिक संबंधों के सत्य के सामने अपने आध्यात्मिक सत्य को वह कमजोर,असहाय पाती है और

भौतिक जगत अर्थात परिवार के वस्तुगत सत्य के सामने उसका आध्यात्मिक सत्य हार जाती है। इसीलिये वह पाठकजी के डाँटनेपर चुप हो जाती है। वह भी अपने अनुभवों के आधारपर जगत (परिवार) को मिथ्या नहीं, सत्य ही मानती है।

' पाठकजी का केस ' व्यंग्य कथा के माध्यम से परसाई मनुष्य का भौतिक जगत के अस्तित्व का ज्ञान तथा उसपर होनेवाला उसका अधिक विश्वास बताना चाहते है। मनुष्य का भौतिक जगत की सत्यतापर दिन - ब - दिन विश्वास बढ़ता जा रहा है और किसी पारलौकिक सत्ता के अस्तित्वपर, उसकी शक्तिपर होनेवाला विश्वास घट रहा है, इस बात का व्यंग्यात्मक चित्रण करनेमें परसाई पूरीतरह से सफल हो गये हैं।

राजनीतिक व्यंग्य :

परसाई यथार्थवादी व्यंग्यकार हैं। आधुनिक काल की पूँजीवादी राजनीति के कुरूप और जनविरोधी चरित्र को बेपर्दा करने के अनेक रूप परसाईजी जानते हैं। पिछले दो दशकों में बदलती हुयी राजनीति उनके व्यंग्यलेखन का मुख्य स्वर रहा है। इस स्वर को मुखरित करनेवाली कितनी कहानियाँ `सदाचार का तावीज` तथा `जैसे उनके दिन फिरे` इन संग्रहों में संकलित हैं।

परसाई एक उन्मुक्त रचनाकार है। वर्तमान समाज व्यवस्थाके समाजिक आर्थिक संबंधों की गहरी पहचान उन्हें है। प्रतिक्रियावादी व्यवस्था हमेशा यही प्रयास करती रहती है कि, शोषणवादी व्यवस्था किसी भी तरह से बनी रहे। उसमें कोई परिवर्तन न हो। इसलिये आज हमारी यह धारणा बन गयी है कि, शासक बनने के लिये वही अधिक योग्य होता है, जो सबसे अधिक लुटेरा हो और शोषण करने के नियमों में बखूबी पारंगत हो। यही बात परसाईजी ने `जैसे उनके दिन फिरे` के माध्यम से कही है।

यह कहानी लोककथा शैली में लिखी एक राजनीतिक कहानी है। यह बात बिल्कुल सही है कि, परसाईजी राजनीति में विशेष रस लेते हैं। पर यह केवल सतही राजनीति नहीं है, मुख्य राजनीति है। `मुख्य` से मतलब वर्गों की राजनीति से है, जो सामाजिक संबंधों और समाज के सभी क्रियाकलापों में हस्तक्षेप करती है।

किसी राज्य के राजा अपने बाद अपने चार पुत्रों में से किसी एक को राजगद्दीपर बिठाना चाहते हैं। इसलिये एक साल में जिसने अधिक धन कमाया हो और विशेष योग्यता प्राप्त की हो, उसे राजा बनाया जायेगा, ऐसी घोषणा की जाती है। एक साल बाद चारों राजकुमार

वापस लौटते हैं।

पहले राजकुमार ने राजा के लिये ईमानदारी और परिश्रम आवश्यक गुण मानकर किसी व्यापारी के यहाँ बोरे ढ़ोने का काम किया। मजदूरी कर के, ईमानदारी से पायी सौ सुवर्णमुद्राएँ उसके पास हैं।

दूसरा राजकुमार शक्ति को विशेष महत्व देता है इसी कारण खुद डाकू बना, और साथमें डाकुओं का गिरोहभी रख गया उसने काफी लूटमार की। उसकी एक साल की कमाई पाँच लाख सुवर्ण-मुद्राएँ है। राजा के लिये साहसी और लुटेरा होना वह जरूरी समझाता है।

तीसरे राजकुमार ने धन कमाने का एक अलग तरीका अपनाया था। वह घी में मुँगफली का तेल और शक्कर में रेत मिलाकर बेचता था। राजा को धूर्त और बेईमान होना चाहिए, ऐसी उसकी धारणा है और इसी धारणा के अनुसार उसने एक साल में दस लाख सुवर्ण मुद्राएँ जमा की।

चौथे राजकुमार ने अपने अनुभवों को बताते हुवे कहा कि, पहले तो क्या काम करना चाहिए, इस बारे में मैं कोई निश्चय नहीं कर सका। भूखी प्यासी हालत में एक `सेवा आश्रम` में पहुँचा तो पायाकि, अंदर का वैभव तो राजमहल से भी अच्छा है। त्याग और सेवा से इतनी सारी संपत्ति पायी है, ऐसा आश्रमवालोंने बताया। वहाँपर चौथे राजकुमार ने ट्रेनिंग ली और उनकी सलाह के अनुसार `मानव सेवा संघ` खोला। इस संस्था के नामपर कितनाही चंदा इकठ्ठा किया।

राज्य का मूल आधार धन है और राजा को प्रजा से धन वसूल करने की विद्या आनी चाहिए। प्रजा से प्रसन्नतापूर्वक धन वसूल करने की

कला में वह माहिर बन गया है। उसकी एक साल की कमाई बीस लाख सुवर्णमुद्राएँ है।

चौथे राजकुमार को राजगद्दी का अधिकारी बनाया गया, क्योंकि उसके पास सबसे अधिक धन है, बड़े जैसा परिश्रम है, दूसरे जैसा साहसी और लुटेरा है और तीसरे जैसा बेईमान तथा धूर्त। इन सारे गुणों से युक्त व्यक्ति ही राजा बन सकता है। इस बात का संकेत परसाईजी ने 'जैसे उनके दिन फिरे' कहानी के माध्यम से दिया है।

इस कहानी में वर्णित मोटे और सादे कपडे पहननेवाला, पवित्रता की मूर्ति प्रतीत होनेवाला छोटा राजकुमार अपने मेहनती, मिलावट करनेवाले, डाका डालनेवाले तीनों भाइयों से अधिक भ्रष्ट, अधिक मालदार और अधिक खतरनाक है, पर अपने इस कपट चातुर्य के कारण राज्य का उत्तराधिकारी भी है। शाब्दिक सुधारवाद की बहुत बड़ी विडंबना प्रस्तुत कथा में देखने मिलती है।

'भेड़ें और भेड़िये' परसाईजी की एक ऐसी महत्वपूर्ण दंतकथा है, जिसमें मौजूदा तरूण पीढ़ी की राजनैतिक, सामाजिक, तथा मानवीय दृष्टि को परसाईजी ने प्रकट किया है। लेखक की कमजोरियाँ तथा सामर्थ्य दोनों के संदर्भ में बतायी गयी विशेषताएँ प्रातिनिधिक है।

इस कथा में जनता भेड़ और राष्ट्रीय बुर्जुवा भेडिये के रूपमें प्रस्तुत है। शोषक हर समय अपना रूप बदलकर सामने आ सकता है। राष्ट्रीय बुर्जुवा हर चुनाव में नये रूप, नये नारों और नये वादों के साथ आता है, अर्थात वे सब [illegible] की खाल ओढ़े हुवे भेड़िये ही होते हैं।

सत्तामें जिस वर्ग का प्रभुत्व है, वह वर्ग, उससे जुड़ा हुआ बुध्दि-जीवी वर्ग तथा [illegible] धर्म का प्रतिनिधित्व करनेवाला पुरोहित वर्ग हमेशा

इस बात का प्रयत्न करता है कि, जनता वास्तविकता को बिना देखे-समझे ही उनकी बात को सत्य रूपमें स्वीकार करें। अर्थात प्रभावी वर्ग संपूर्ण जनता को धोखे में रखकर नयी नयी विकास योजनाएँ बनाकर भेड़िये की तरह भेड़ खाते रहेंगे। राजनेताओं के भ्रष्ट चरित्र को इस कथा में वर्णित किया है।

इसमें बूढ़ा सियार, जो बूढ़े पूँजीवादी राजनीतिक नेता का प्रतीक है, जब आकाश की ओर देखता है, तो वह ध्यानमग्न होकर विश्वात्मा से कनेक्शन जोडने का प्रयत्न कर रहा है इसप्रकारकी व्यंग्यात्मक टिपणी की है।

कथा में वर्णित पशुओं के प्रजातंत्र और आज के प्रजातंत्र में कोई विशेष अंतर नहीं है। यह बात लेखक ने व्यंग्यात्मक ढंग से कही है। प्रजातंत्र लोगोंद्वारा, लोगों के लिये चलाया जाता है, पर असलियत यह है, कि, जनता के द्वारा चुने गये प्रतिनिधि प्रजा के हित साधन की अपेक्षा अपने स्वार्थ-साधन की प्रवृत्ति को ही अपनाये रहते हैं। परिणामत: गरीब भोली-भाली जनता का शोषण, हानि होती रहती है। `रक्षक ही भक्षक` बन जाता है, ऐसी स्थिति देखने मिलती है जिसे व्यंग्य का लक्ष्य बनाया गया है।

परसाई सर्वहारा वर्ग से जुड़े हुये रचनाकार है और वे उन्हीं के लिये संघर्षरत है। इस बात को उन्होंने `इति श्री रिसर्चाय` में ईमानदारी और सत्य प्रमाणों के साथ व्यक्त किया है। उन्होंने समाज के बुध्दिजीवियोंपर तीखा व्यंग्य किया है, जो अपने आप को कुछ अलग ही समझते है। यदि ये लोग सही अर्थों में बुध्दिजीवी है, तो जनसामान्य की लड़ाई में उन्हें परसाईजी के साथ होना चाहिए।

प्रस्तुत कहानी का अंतर्भाव राजनीतिक व्यंग्य में इसलिये किया

है कि, इसमें परसाईजी ने बुध्दिजीवी और राजनीतिज्ञ के अंतर्संबंधों को बड़ी कुशलता से और वास्तविकता के साथ अंकित किया है। इसमें एक बिना कुछ किये ही अमर होने की बात सोचता है। अपनी सारी विरासत अपने पुत्र-शिष्यों और आगे आनेवाली पीढ़ियोंपर लादना चाहता है, नहीं तो वे शांति के साथ मर नहीं सकेंगे। जैसे राजनीतिज्ञ के लिये बलिदान, त्याग, सेवा और देशप्रेम की बात करना फॅशन है तथा इसी किस्म के बुध्दिजीवी के लिये गरीबों की दुर्दशा, देशप्रेमपर लिखने का फॅशन है। जब कोई राजनीतिज्ञ या बुध्दिजीवी भोंडे प्रदर्शन पर उतर आता है, तो परसाईजी उसे अपने व्यंग्य का निशाना बनाते है। यह बात `इति श्री रिसचयि` यह कहानी पढ़नेपर बिल्कुल ठीक लगती है।

परसाईजी के व्यंग्य लेखन की यह विशेषता है कि, उन्होंने पौराणिक कथाओं का आधुनिक संदर्भ में प्रयोग किया है। भारतीय जीवन का इतिहास, पुराण, उनके अनेक पात्र या घटनाएँ अपने परंपरागत पौराणिक दायरे से बाहर निकल कर आते हैं। एक अद्भुत रचनात्मक सहयोग देकर वे एक महत्वपूर्ण समकालीन अर्थतक व्यंग्य को ले चलते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि, प्राचीन कालीन मिथकों को अपने समय के संदर्भ में अत्यंत सूक्ष्मता से प्रासंगिक बना देना और उसकी सहायता से वर्तमान सत्ता, व्यवस्था का नंगा चरित्र प्रस्तुत करनेवाले परसाईजी का व्यक्तित्व निश्चित रूपसे अन्य व्यंग्यकारों से अलग दिखायी देता है। सुदामा के चावल, लंकाविजय के बाद, मेनका का तपोभंग, त्रिशंकु आदि व्यंग्य कहानियाँ इसके उत्तम उदाहरण हैं। इसमें से प्रथम तीन कहानियों में आज की राजनीति की झलक देखने को मिलती है तो `त्रिशंकु` मे समाज व्यवस्था की अनिश्चितता की ओर निर्देश किया गया है।

`सुदामा के चावल` में सुदामा को जो समृध्दि मिलती है, वह केवल पुरानी मित्रता के कारण नहीं, बल्कि राज्य के उच्च पदस्थ

व्यक्ति से निम्नतम कर्मचारियों की घूसखोरी का रहस्य जान लेने के बाद मुँह बंद करने के लिये दी जाती है। इसी के आधारपर हम कह सकते हैं कि, परसाईजी ने पौराणिक कथाओं तथा चरित्रों में नया अर्थ भरकर समकालीन संदर्भों से सबंधित किया है। इसी के माध्यम से परसाई आज की वर्तमान स्थिति का निर्देश करते हैं। गोपिकाओं से घिरा हुआ कृष्ण पुराणों में देखनेको मिलता है, तो आज राजधानी में अनेक स्त्रियों से घिरे बैठे व्यक्ति का परिचय मिलता है। ऐसा व्यक्ति व्यक्तिपूजा, घूस-खोरी, या तोहफा के बिना आगे बढ़ नहीं सकता। परिणाम यह होता है कि, संपूर्ण व्यवस्था में बुराईयों का प्रसार होता है और इस रहस्य को जाननेवाले प्रत्येक व्यक्ति को चुप रखने का भरसक प्रयत्न किया जाता है। उसके वर्गीय चरित्र में परिवर्तन लाने के लिये कोशिशें की जाती है। प्रभावी वर्ग अपनी उदारता, सदाशयता, परोपकारी वृत्ति तथा दान-शीलता का विज्ञापन करता है। कभी हल जोतता है, कभी दान दिया जाता है, कभी हरिजनों, या बाढ़पीड़ितों को मदद की जाती है। इसके विरोध में मुँह खोलने का अर्थ एक प्रकार से मौत है। राज्य का एक गुप्त रहस्य प्रकट न करने के लियें एक लाख स्वर्णमुद्रा, मकान और ग्राम देकर सौदा किया जाता है। ऐसे लोगों को ही ज्ञानपीठ पुरस्कार देकर सम्मा-नित किया जाता है।

राजनीति के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा घूसखोरी पर परसाईजी ने अपने व्यंग्य के माध्यम से प्रकाश डाला है, जो स्थिति प्राचीन काल से देखने को मिलती है।

परसाई प्राचीन मिथकों के माध्यम से वर्तमान समय तथा समाज को व्यक्त करते है यह बात सर्वज्ञात है। वर्तमान प्रजातंत्रीय व्यवस्था के नंगे नाच को तथा व्यवस्थापकों के चरित्र को `लंका विजय के बाद` इस कहानी के जरिये व्यक्त किया है। कथा में इसप्रकार का व्यंग्यात्मक उल्लेख

मिलता है कि, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में सहभाग लिया था, वे आज सर्वेसर्वा बन गये हैं। राज्य के नागरिक इनके उपद्रवों से तंग आ गये हैं।

लंकाविजय के मद से सारे वानर उन्मत्त हो गये हैं। किसी के भी बगीचे में घुसते थे और उसे नष्ट कर देते थे। किसी के भी घरपर अधिकार जमा लेते थे, लोगों का धन-धान्य छीन लेते थे, किसी की भी स्त्री का अपहरण करते हैं। जब नागरिक उनका विरोध करते थे, तो कहते थे कि, हमने तुम्हारी स्वतंत्रता के लिये संग्राम किया था। आर्य-भूमि के लिये हमने त्याग और बलिदान किया है। यह कहकर रुकते नहीं थे, शरीरपर लगे घाव भी दिखाते थे। अधिक मजे की बात यह थी कि, उन में से अधिकांश वानरों ने अपने शरीरपर नकली घाव बना लिये थे। प्रत्यक्ष युध्द में इनका सहभाग तो था ही नहीं, फिर भी खुले आम जनता को लूट रहे थे।

परसाईजी ने इस कहानी के माध्यम से इस बात का भी संकेत दिया है कि, वानर सीता के परित्याग के बाद 'सीता सहायता कोष' खोलकर अयोध्या की उदार और श्रध्दालु जनता से चंदा हड़प कर गये थे।

रामराज्य की मूल कल्पना अन्याय, अत्याचार, अधर्म के विरूध्द की गयी कोशिश के रूपमें है। सत्य की प्रतिष्ठा की कल्पना उसमें निहित है। परंतु परसाईजी ने विजयी वानरों के उत्पात का वर्णन कथा में जोड़कर यह बताने का प्रयास किया है कि, अयोग्य व्यक्तियों के हाथों अधिकार आ जाने से अन्याय या अत्याचार ही होते रहेंगे। किसी अच्छे फल की अपेक्षा उनसे नहीं की जा सकती।

आजादी के बाद देश में व्याप्त राजनैतिक भ्रष्टाचार को 'लंका विजय के बाद' में परसाई ने सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

निष्कर्ष रूपमे हम देखते हैं कि, आज की शासन व्यवस्था उच्छृंखल बंदरों के हाथ में आ गयी है। सहायता कोष के नामपर चंदा हड़पनेवालों की किस प्रकार एक जमात बन गयी है, जो नागरिकों से चंदा वसूल कर अपना पेट भर रहे हैं।

'मेनका का तपोभंग' इस कहानी के माध्यम से परसाईजी ने एक बिल्कुल नया तथ्य हमारे सामने रखा है। महान तपोव्रती और समाज सेवी भैयासाब का तपोभंग मेनका नहीं कर सकती। भैयासाब ही मेनका के तपोभंग के लिये उद्योगरत दिखायी देते हैं।

परसाई हमें कहना चाहते हैं कि, मेनका का तपोभंग करने का कुछ व्यक्तियों ने ठेका ही ले रखा है। मेनका भैयासाब नामक एक ऐसे व्यक्ति से संबंधित है, जो तीस साल से समाजसेवा में लगे हैं। स्वतंत्रता आंदोलन में दो बार जेल जा चुके है, बाद में कई महत्वपूर्ण पदोंपर रहे है, भारत सेवक संघ, महिला संघ, सर्वोदय आंदोलन में शरीक होकर सभी के समान विकास के लिये प्रयत्न करते है। ऐसे महान व्रती भैयासाब की तपस्या भंग करने के लिये मेनका को भेजा गया था। पर कथा के आखिर में हम देखते हैं कि, भैयासाब ही मेनका का व्रतभंग करते है, क्योंकि मेनका ही उनके जीवन का प्राप्य है। परसाईजी ने इस व्यंग्य कथा के माध्यम से यह बात प्रभावी रूपमें कहने का प्रयास है कि, आज मनुष्य स्वर्ग जैसी अप्राप्य वस्तु को प्राप्त करने की कोशिश नहीं कर रहा है, बल्कि वह तो मेनका जैसी एक सुंदर स्त्री को अपने वश में करना चाहता है। नारी का अपनी कुंठाओं की तृप्ति के लिये प्रयोग किया जाता है। साथ में उन राजनीतिज्ञोंपर भी व्यंग्य किया है, जो जनता को भुलावे में रखकर आभिजात्य और विलासिता का जीवन जी रहे हैं।

` आमरण अनशन ` इस रेखाचित्र में कई वर्गों के प्रतिनिधियों को एक साथ बेपर्दा करने की ताकद है।

स्थानीय नेता और नगरपालिका अध्यक्ष गोवर्धन बाबू, स्थानीय संपन्न व्यापारी सेठ किशोरीलाल और सत्ता दल के महत्वपूर्ण प्रांतीय नेता भैयासाहब के अहम् और स्वार्थों का सामंजस्य तथा टकराव कथा में वर्णित किया है। वैसे देखा जायें, तो ये तीनों एक-दूसरे के लिये सीधे ही महत्वपूर्ण नहीं है, इसलिये एक - दुसरे से हार नहीं मानते। परंतु मुख्यमंत्री जैसे सत्ताधारियों की अधीनता वे सहजता से स्वीकार कर लेते हैं। कारण यही ताकद उनका बड़ा से बड़ा स्वार्थ पुरा करने में सक्षम है। प्राय: पाया जाता है कि, ऐसे लोगों का स्वार्थ सदा ही बड़े सत्ताधारियों का सहयोग करता है। जब उनका अहम् सत्ताधारियों से टकराता है तो ऐसी स्थिति देखने को मिलती है कि, सत्ताधारियों के स्वयंके अहम् और स्वार्थ में टकराव होता है। इस टकराव में ऐसे वर्गों का अहम् हारता है, और उनका बड़ा स्वार्थ जीतता है। इसीलिये वे उन सत्ताधारियों की अधीनता स्वीकारकर लेते हैं।

गोवर्धनबाबू, सेठ किशोरीलाल और भैयासाहब का स्वार्थ वह सत्ताधारी पूरा कर सकता है। इस दृष्टि से देखा जायें, तो वह पूरी तरह से उनका भाग्यविधाता है। परंतु स्वयं उसका स्वार्थ गोवर्धन बाबू जैसे स्थानीय नेता और सेठ किशोरीलाल जैसे स्थानीय धनाढय पूरा नहीं कर सकते। परंतु भैयासाहब जैसे महत्वपूर्ण प्रांतीय नेता राजनीतिक विपत्ति में उसकी स्वार्थ-पूर्ति कर सकते है। इसीकारण सत्ताधीश भैयासाहब के पक्ष में निर्णय देता है। उसके निर्णय का गोवर्धन बाबू और सेठ किशोरी लाल समर्थन करते है। यहीपर हम देखते हैं कि, उनका स्वार्थ जीत जाता है, और अहम् हारता है। यहीपर हम संकेत पाते हैं कि, भैया साहब के अहम की विजय सत्ताधारी के स्वार्थ की और फलस्वरूप गोवर्धन बाबू और सेठ किशोरी लाल के स्वार्थों की उनके अहमपर विजय है। इसलिये इन

संबंधों से भैयासाहब का अहम् गोवर्धन बाबू और सेठ किशोरी लाल के स्वार्थों के रूपमें ही विजयी होता हुआ दिखायी देता है।

`आमरण अनशन` इस व्यंग्य कथा के माध्यम से परसाईजी ने समाज में स्थित विभिन्न वर्गों के अमूर्त संबंधों को पूरी सफलता और कलात्मकता के साथ कुछ इने-गिने व्यक्तियों के व्यवहारद्वारा चित्रित किया है।

`आमरण अनशन` की तरह `फॅमिली प्लेनिंग` कथा में मूलवस्तु के तमाम व्यंग्य देखने को मिलते हैं।

एक गरीब मास्टर के घर में आनेवाले सातवें बच्चे के जीवन में न आनंद होगा, न उल्लास। केवल उदासी ही उदासी होगी। शायद इसीलिए बूढ़े रूपमें बालक ने जन्म लिया इसप्रकार के उल्लेख से व्यंग्य साधा गया है।

आर्थिक व्यंग्य :

परसाईजी की व्यंग्य रचनाएँ पढ़नेपर एक बात स्पष्ट होती है कि, उनका मूल उद्देश्य विसंगतियोंको उद्घृत करना तथा इन विसंगतियों के खिलाफ आवाज उठाना है। इस प्रयास में उन्होंने आर्थिक दुर्बलता को भी व्यंग्य का विषाय बनाया है।

आज के जमाने में पूर्ण समाधानी या तृप्त मनुष्य का मिलना कठिन है। आर्थिक तंगी के कारण मनुष्य अपनी रोजमर्रा की जिंदगी भी ठीकतरह से नहीं जी सकता। फिर भी जो परिस्थितियों से हाथ मिलाकर चलता है, काफी कुछ संतोष पाता है। ऐसे ही एक स्कूल मास्टर की दिनचर्या बताकर उसे `एक तृप्त आदमी` कहते समय लेखक ने व्यंग्य का ही सहारा लिया है। वैसे तो कहानी बिल्कुल सीधी-सादी लगती है, पर उसमें व्यंग्यपूर्ण बातों से सही परिणाम साधा गया है।

अभावों से भरा एक लंबा जीवन तिल तिल कर के आदमी को कैसे तोड़ता है और फिर चीजों के न होने के पक्ष में तर्क जुटा सकने की एक मानसिकता अपने आप ही विकसित होती जाती है। 'एक तृप्त आदमी' इस कहानी के एन्.एल्.मास्टर इसीप्रकार के जीव है, जो अपने रोजमर्रा के हर अभाव के लिये एक रेडिमेड तर्क की ढाल बनाते है। साथ ही अपने आप को एक तृप्त आदमी के रूपमें साबित करने की चेष्टा करते है।

लेखक के मित्र मास्टरजी पर मुग्ध हैं, उन्हें 'रेगिस्तान का झरना' कहते हैं। परसाई हमारा ध्यान ऐसे मनुष्यों के जीवन की ओर ले जाते है, जो मनुष्य होने की तेज आकांक्षित गति से कटकर या सामाजिक विसंगति का शिकार बनकर समाज, खुद अपने लिये तथा परिवार के लिये निरर्थक और निसार हो गया है। आश्चर्य की बात तो यह है कि, वह

निरर्थकता को ही सँभालने का प्रयास करता है और इसीमें जीवन की सार्थकता मान लेता है। इसीलिये व्यंग्यकार ने उसे 'एक तृप्त आदमी' कहा है। लेखक ऐसे किसी मनुष्य की परवशता का, मजबूरी का मजाक नहीं उड़ाता, कारण वह सामाजिक दायित्व के बोध को मानता है।

परसाईजी ने कहानी के अंत को एक टिप्पणी के रूपमें प्रस्तुत किया है, जिसके बाद कुछ और कहने या जोड़ने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

'मुझे याद आता है कि, पिछले साल में बीमार पड़ा था, तब मेरी भूख भी मर गयी थी, अच्छे पकवान मेरे सामने रखे रहते थे और मैं मुँह फेर लेता था।' (६) यहाँपर यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि, 'मैं' की बीमारी व्यक्तिगत थी, परंतु मास्टर की बीमारी पूरे समाज और व्यवस्था से जुड़ी हुयी है और इतिहास इस बात का साक्षी है कि, स्वातंत्र्य मिलने के बाद ४० वर्षोंबाद भी स्थिति में कहीं कोई परिवर्तन या हेर-फेर नहीं हुवा है।

चेखव ने आज से अस्सी वर्ष पहले, अपने देश के अध्यापकों की जिस स्थिति को गहरी व्यथा और संवेदना के साथ देखा और एक आत्म-घाती तृप्ति और महत्वाकांक्षाहीन जीवन की विडंबनाओं को अनुभव किया था, वही स्थिति आज भी हमारे देश में ज्यों की त्यों बरकरार है।

प्रशासनिक व्यंग्य :

शासन का संचालन करनेवाली शक्तियों में जो विसंगतियाँ पायी जाती है, उन्हीं को लक्ष्य करते हुवे प्रशासनिक व्यंग्य की निर्मिती की जाती है। यह व्यंग्य इसलिये आवश्यक होता है कि, वह शासन व्यवस्था को कमजोर तथा खोखला बनानेवाली विसंगतियोंपर नियंत्रण रखने का प्रयत्न करता है।

हरिशंकर परसाईजी की 'भोलाराम का जीव' यह व्यंग्यकथा प्रशासनिक टालमटोल और रिश्वतखोरी का यथार्थ चित्रण करने में बहुत कुछ हदतक सफल हुवी है।

इस कथा का मुख्य पात्र भोलाराम ऐसे देश का वासी है, जहाँ दोस्तों को भेजी गयी चीजें रेल्वेवाले उड़ाते है और होजियरी के पार्सलों के मौजे रेल्वे अफसर पहनते हैं। इमारतों के ठेकेदार, जो पूरे पैसे लेकर रद्दी इमारतें बनाते हैं, बड़े बड़े इंजिनियर जो पंचवार्षिक योजनाओं का पैसा खाते है, ओवरसियर, जो उन मजदूरों की मजदूरी हड़प करते है, जो कभी कामपर आते ही नहीं। ऐसी विशेष योग्यता तथा कार्यक्षमता से युक्त लोग नरक में भेजे जाते हैं ताकि वहाँ नवनिर्माण के काम में उनकी मदद मिल सकें।

लेखक परसाई ने एक ऐसे दफ्तरशाही तंत्र को उद्घाटित किया है, जहाँ रिटायर होने के पाँच वर्ष बाद भी भोलाराम को पेंशन नहीं मिलती। इस फैंटेसी में हम देखते हैं कि, 'गरीबी' की बीमारी के कारण भोलाराम की मृत्यु हो चुकी है। स्वर्गलोक में धर्मराज इसलिये चिंतित है कि, भोलाराम की मृत्यु के पाँच दिन बाद भी उसका जीव स्वर्गलोक में नहीं पहुँचा। नारद धर्मराजकी चिंता हल करने के उद्देश्य से भू लोक की खाक छान लेते हैं और इस बात का पता लगाने में सफल हो

जाते हैं कि, भोलाराम का जीव उस फाईल में अटका है, जिसपर अभी उसकी पेंशन का मामला तय होना है। नारद यह बात भी समझ जाते हैं कि, मामला ठीक से तय क्यों नहीं हो रहा है। नारद भोलाराम की केस सुलझाना चाहते हैं। पर उनके पास वजन रखने के लिये उनकी वीणा के सिवा और कुछ नहीं है। संबंधित अधिकारी की लड़की के लिये नारद अपनी वीणा बाकायदा `वजन` के रूपमें रखते हैं। फिर ऐसा चमत्कार होता है कि, एक के बाद एक फाइलें निकाली जाती हैं और भोलाराम की पेंशन के बारेमें सोचा जाता है। यह कहानी देश की संपूर्ण व्यवस्था का आँखों देखा हाल प्रस्तुत करने में कामयाब हुवी है, जिसमें कार्यालयीन गैर-व्यवस्था का चित्र प्रमुखता से प्रस्तुत किया है।

इसीप्रकार की एक और कहानी `रोटी` का उल्लेख किया जा सकता है, जिसमें यह बताया गया है कि, प्रजातंत्रीय राज्यमें किसी बात का निर्णय लेने के लिये स्थापित की जानेवाली उपसमितियाँ और उनकी रिपोर्ट का प्रकाशन यह सिलसिला इतने लंबे समय का होता है कि, फरियाद करनेवाला तबतक जिंदा भी नहीं रहता। प्रशासनिक कार्यों में लायी जानेवाली विलंब और प्रजातंत्रीय राज्य में प्रजा की जो बुरी हालत है इस बात की ओर परसाईजी ने संकेत किया है। प्रजातंत्र के राजा का यह उत्तरदायित्व होता है कि, वह अपनी प्रजा की उदरभरणकी आवश्यकता को पूरा करें। पर आज हालत ऐसी है कि, कितनेही लोग बिना रोटी के मर रहे हैं। ऐसे लोग जब राजा के पास फरियाद करते हैं, तो उनकी शिकायतों का फैसला करने के लियें उपसमितियों का आयोजन किया जाता है और वह कमिटी अपना रिपोर्ट बता दे, तबतक फरियादी मर जाते हैं। वस्तुत: जनता की अन्न जैसी मूल समस्या का समाधान जितनी जल्दी हो सकें, प्रस्तुत करना आवश्यक होता है, पर इसके स्थानपर विलंब ही लाया जाता है। यह बात परसाईजी ने `रोटी` इस व्यंग्य कथा के माध्यम से कही है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में देश की अधिक से अधिक तरक्की होगी, ऐसी उम्मीद लगाकर हम बैठे थे। परंतु देश की स्थिति सुधरने की अपेक्षा गिरती हो जा रही है। आज हमारे सामने कितनी ही समस्याएँ मुँह फैलाये खड़ी हैं, जिनमें खाद्य की समस्या प्रमुख है। परंतु समस्या को सुलझाते समय गलत तरीकों को अपनाया जाता है। खाद्य की समस्या का समाधान ढूँढते समय कागज़ कारखानों को ऑर्डर दिया जाता है और आखिर में यह समस्या कागज़पर हो रहती है। इस बात का व्यंग्यात्मक चित्रण `खेती` इस व्यंग्य कथा में मिलता है।

खाद्य में आत्मनिर्भर बनने के लिये की जानेवाली घोषणाएँ, फाइलें, इन फाइलों का कृषिविभाग, अर्थ विभाग, सिंचाईविभाग, गृहविभाग और अंत में फूड कार्पोरेशन के पास पहुँचना जैसे लंबे क्रिया कलापों का उल्लेख करते हुये हमारी सारी योजनाएँ कागज़ोंपर ही रहती हैं। कागजोंपर ही खेती उगानेवाली हमारी कागजी मशीनों पर परसाईजी ने व्यंग्य किया है।

साहित्यिक व्यंग्य :

परसाईजी एक साहित्यकार हैं। फिर भी साहित्य के क्षेत्र में पायी जानेवाली विसंगतियों की ओर संकेत करना उन्होंने अपना कर्तव्य समझा है। इस कर्तव्य को निभाते समय साहित्य में प्रचलित कोई विशेष प्रवृत्ति, साहित्यिक चोरी, साहित्यिकों की ईर्ष्याभावना, काव्य वाचन की अतिशयता का भाव आदि साहित्यिक व्यंग्य के विषय रहे हैं।

परसाईजी ने `दवा` कथा के माध्यम से आज के उन कवियों की ओर संकेत किया है, जो कविता पाठ का कोई भी मौका किसी भी हालत में जाने नहीं देते।

कवि `अनंग` जी का अंतिम क्षण नजदीक आ गया था। उनकी पत्नी चाहती थी कि, उनका बेटा आनेतक ५-६ घंटों के लिये `अनंग` जी को जीवित रखा जायें। पर डॉक्टर के पास ऐसी कोई दवा नहीं थी, जो कवि महोदय को एक घंटे से अधिक समयतक जिंदा रख सकें। अनंगजी के एक मित्र ने यह चुनौती स्वीकार कर ली कि, वे बहुत मजे में ५-६ घंटोंतक कवि को जीवित रख सकते है। उन्होंने सभी लोगों को कमरे से बाहर निकाल दिया। अनंगजी के पास बैठकर उनके सुमधुर कंठ की तारीफ करने लगे। साथ में यह भी गुजारिश की कि, जाते जाते वे कुछ सुनाएँ। अनंगजी ने उनसे अपनी कविता की कापी निकाल ली और कविता पढ़ना शुरू किया। शाम हो गयी, अनंगजी का बेटा आया, उसने कमरे में घुसकर देखा कि, पिताजी कविता पढ़ रहे है और उनके मित्र मरे पड़े हैं।

परसाई आधुनिककाल की कविता की निरर्थकता की ओर संकेत करते है। मरनेवालों को जिंदा रखने की और जिंदा लोगों को मारने की

महान ताकद कवितामें होती है। यह बात `दवा` व्यंग्यकथा के माध्यम से कही है।

समवयस्कों में, समान विचार वालों में मित्रता होती है। पर जब दो व्यक्तियों मे एक-दूसरे को उखाड़-फेंकने की होड़ लगती है, और इसमें जब वे असफल रहते है, तो किसी तीसरे को नेस्तनाबूत करने के लिये दोनों एक हो जाते हैं, दोनों मे मित्रता हो जाती हैं। मित्रता की इस अजीव पध्दति की ओर परसाई 'मित्रता' इस कहानी के माध्यम से निर्देश करते हैं। दो लेखकों में पायी जानेवाली अत्याधिक ईर्ष्या का वर्णन लेखक ने व्यंग्यात्मक ढंग से किया है। दोनों मे बिल्कुल बनती नहीं थी, दोनो में मित्रता स्थापित करने के कितने सारे प्रयत्न असफल हुवे। पर कुछ समय बाद दोनों एक-दूसरे के मित्र बने हुवे दिखायी देते है। उसका कारण जाननेके प्रयास में यह सत्य सामने आता है कि, दोनों मिलकर किसी तीसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न कर रहे हैं। साहित्यिकों में पायी जानेवाली इस जानलेवा स्पर्धात्मक प्रवृत्ति की ओर परसाई ने संकेत किया है।

परसाईजी ने परंपरागत कथा रूपों के विकास और नये से नये कथा रूपों के अन्वेषण एवं निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। `एक जोरदार लडके की कहानी` शीर्षक व्यंग्य कथा में आधुनिक चालू किस्म की `रचना-प्रक्रिया` पर तीखा व्यंग्य किया है।

कलाकार वह होता है, जिसका हृदय विशाल तथा दृष्टिकोण उदात्त हो। संकुचितता को त्यागकर विशालता को अपनाने में ही कलाकार की महत्ता होती है। परंतु प्राय: ऐसी स्थिति देखने को नही मिलती है। कोई भी कलाकार किसी दूसरे कलाकारकी प्रशंसा नही सह

सकता । इस बात को `दंड` कहानी के माध्यम से परसाईजी ने स्पष्ट किया है।

किसी अपराधी कलाकार को सजा देते समय राजा मंत्री से सलाह माँगते हैं। तीन साल की कैद, दस साल की कैद, आजन्म कारावास फाँसी जैसी सजाओं का उल्लेख किया जाता है। पर मंत्री महोदय का कहना है कि, उस कलाकार का अपराध इतना बड़ा है कि, ये सजाएँ उसके सामने कुछ भी नहीं है। उनके मतानुसार उस कलाकार को एक जगह बिठाकर उसके सामने दूसरे कलाकार की दिल खोलकर तारीफ करनी चाहिए। यही उसके लिये सही सजा है। कहने का मतलब यह है कि, कोई कलाकार फाँसी जैसी कड़ी से कड़ी सजा आसानी से सह सकता है, परंतु दूसरे कलाकार की प्रशंसा नहीं सुन सकता।

कलाकार खिलाड़ू वृत्ति का होना जरूरी होता है। दूसरे की कला के प्रति आदर व्यक्त करना, किसी कलाकार का बड़प्पन मान लेना यह कलाकार के लिये बहुत ही सहज बातें होनी चाहिए। परंतु इसकी विपरितता ही देखी जाती है, इस बात को बताना प्रस्तुत कहानी का उद्देश्य है।

व्यक्तिगत व्यंग्य :

व्यक्तिगत व्यंग्य किसी व्यक्ति में पायी जानेवाली विसंगतियाँ, व्यक्ति का अमानवीय व्यवहार, व्यक्तिगत दोषों का उद्घाटन आदि उद्देश्यों से लिखा जाता है। यह बहुत ही साहस का कार्य है। परंतु किसी प्रचलित बुराई के प्रति समाज की घृणा उत्पन्न करने में सहायक बनता है। इसलिये इस प्रकार के व्यंग्य का महत्व विशेष रूपसे दिखायी देता है। एक व्यक्ति के दोषों का निर्मूलन करने का प्रयत्न करनेवाला यह व्यंग्य दूसरे व्यक्तियों को सावधान करता है कि, वे कोई बुराई न करें।

मनुष्य स्वार्थी होता है। अपनी ही स्वार्थपूर्ति की दायरे में फँसकर उसमें संकुचित वृत्ति का प्रभाव अधिक बढ़ता है। शायद इसीलिये वह किसी दूसरे व्यक्ति की तरक्की नहीं देख सकता। इस बात को परसाईजी ने 'दु:ख' व्यंग्य कथा के माध्यम से व्यक्त किया है।

एक दफ्तर के एक कर्मचारीका तबादला हुआ था। इसलिये उसकी बिदाई के लिये एक समारोह का आयोजन किया गया। दफ्तर के अन्य कर्मचारी काफी दु:खी लग रहे थे। एक आदमी तो एक कोने में बैठकर सिसक सिसककर रोने लगा था। ऐसा लगता था कि, वह उस आदमी से बहुत ही प्यार करता था। इस संदर्भ में पूछनेपर उसने बताया कि, 'यह साला तरक्कीपर जा रहा है।'

अर्थात दु:ख उस कर्मचारी के जाने का नहीं, बल्कि वह तरक्कीपर जा रहा है इस बात का है। व्यक्तिगत द्वेष या मत्सर की भावना को उद्घाटित करना इस व्यंग्य कथा का उद्देश्य है।

किसी कार्यालय के विभाग में बराबरी के पदपर काम करनेवाले दो व्यक्ती साथ साथ सीढ़ियाँ चढ़कर अपने कमरों मे पहुंचते थे। ऑफीस में

एक ऊँचा पद खाली हो गया, तो दोनों कोशिशें करने लगे। दूसरे ने ऐसी चालें चलीं कि, उसे ऊँचा पद मिल गया। अब वह सीढ़ियों से नहीं चढ़ता बल्कि लिफ्ट की ओर बढ़ा। पहले ने अपनी सीढियों की दीर्घायु में ही संतोष मान लिया।

ऊंचे पद की प्राप्ति के लिये जो मार्ग अपनाये जाते हैं, उसकी ओर व्यंग्यात्मक संकेत करते समय परसाइंजी ने लिफ्ट और सीढियों के प्रतीक से समानता में आयी असमानता का निर्देश किया है।

हृदय भावों का प्रतीक होता है। एक मनुष्य की हैसियत से उससे मानवीय व्यवहारों की अपेक्षा की जाती है। पर जब वह भावना-शून्य व्यवहार करता है, तभी उसकी हृदयहीनता का परिचय मिलता है। ऐसा ही एक हृदयहीन प्रिन्सिपॉल अपना प्रत्येक काम अपने हृदय की पुकार के अनुसार करता है। पर उसका प्रत्येक कार्य गलत ही लगता है। योग्य शिक्षक को निकालकर अयोग्य शिक्षक की भर्ती कराना, चपरासी का वेतन काटना, युवती का ब्याह किसी वृध्द से कराना जैसे कितने ही कार्य वह हृदय की पुकार के अनुसार करता था। ॲक्सिडेंट में उसकी जब मौत हो जाती है तब पोस्टमार्टम के समय डॉक्टरों को उसका हृदय बहूत ढूंढनेपर भी सीने में नहीं मिला। बिना हृदय के मानव की कल्पना तो नहीं की जा सकती है। काफी जाँच-पडताल के बाद उसका हृदय तलुए में मिल जाता है।

प्रस्तुत कथा में परसाईजी ने हृदयका स्थान सीने में न बताकर तलुए में बताया है और उसके आधारपर उसके हृदयहीन व्यवहारों पर प्रकाश डाला है। बुरे कर्मों को भी हृदय की पुकार मानकर करनेवाला व्यक्ति निश्चित रूपसे हृदयहीन होगा, यह बात व्यंग्य के सहारे पर-साईजी ने बतायी है।

हृदयहीनता के संदर्भ में परसाईजी की एक और कथा का उल्लेख करना आवश्यक होगा, जिसका नाम है, `चार बेटे`।

`चार बेटे` व्यंग्य कथा विसंगतियों की व्यापकता के निर्घोष भावना के कारण एकदम सतही बनकर रह गयी है।

कथा में वर्णित बुढ़ऊ और उनकी पत्नी एक आदर्श दंपती थे। जीवनभर दोनों में कभी भी झगड़ा नहीं हुआ। परंतु मरणोपरांत दोनों स्वर्ग में आये और तब से दोनों में हरसमय झगड़ा हो रहा है। इसका कारण जान लेने की कोशिश में बुढ़ऊ के गाँव से आये धोबी का उल्लेख मिलता है, जिसने बुढ़ऊ से कुछ कहा था और तब से बुढ़ऊ बिल्कुल बिगड़ गये थे। सही बात जानने के लिये जब धोबी को बुलाया जाता है तो वह कहता है कि, बुढ़ऊ के चार बेटों में जायदाद के बँटवारे के संदर्भ में झगडा हुआ। दो बेटों ने कचहरी में अर्जी दे दी कि, हम ही बाबा के दो लड़के हैं, इसलिये जायदाद का बँटवारा हम दोनों में ही होना चाहिए। बस इतनी सी बात धोबी ने बाबा से कही और तबसे बाबा अपनी साध्वी पत्नी से बार बार पूछ रहे हैं - `बाकी दो लड़के किस के हैं।`

लेखक हरिशंकर परसाईजी ने 'चार बेटे' व्यंग्य कहानी के माध्यम से अधिक सेअधिक जायदाद हड़प करने के लिये अपनी माता को भी बदनाम करनेवाले कपूतों की ओर अंगुलीनिर्देश किया है। जिस पत्नी के साथ सारी उम्र बितायी, उस पत्नीपर अविश्वास दिखाने वाले बुढ़ऊ को देखकर और भी खेद होने लगता है। इसी बात के स्पष्टीकरण में लेखक ने त्रेता युग की रामकथा का उल्लेख किया है।

परसाईजी प्रत्येक व्यक्ति को उसके विशिष्ट व्यक्तित्व, मनोविज्ञान तथा व्यवहार को सामाजिक व्यवहार तथा विकास की उपज के

रूपमें देखते हैं। वे व्यक्तिद्वारा परिवेश तथा परिवेश द्वारा व्यक्ति को परिवर्तित करने के प्रयासों के द्वंद्व के परिणाम के रूपमें ही व्यक्ति के मनोविज्ञान, व्यक्तित्व और व्यवहार को पढ़ते हैं। इस सिलसिले में जिन व्यक्ति चित्रों का निर्माण उन्होंने किया है, उनमें `असहमत` विशेष महत्व का है।

`असहमत` एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है, जो खातेपीते परिवार में जन्म लेता है। अर्थात जीवन के प्रारंभिक काल में जीवन की कड़वाहट से उसका परिचय नहीं हो पाया। इसीलिये तो उसके मन में विविध प्रकार की महत्वाकांक्षाएँ उभरती है, जिनकी पूर्ति की लिये वह प्रयत्नशील रहता है।

प्रबल महत्वाकांक्षा प्रबल अहंकार को जन्म देती है, जिसका अपना एक विशेष मनोविज्ञान होता है। ऐसी मानसिकता में व्यक्ति अपनी हार, योग्यता का सही मूल्यांकन स्वीकार नहीं करता। `असहमत` भी इसके लिये अपवाद नहीं है। वह ज़िद पकड़कर बैठा है कि, यदि वह योग्य है, तो उसे मिलना चाहिए। फिर दुनिया उसे क्यों कुछ नहीं दे रही है? पर वह निराश नहीं होता, समझौता नहीं करता। वह दुनियापर अपनी योग्यता सिध्द करने के लिये, दुनिया को परास्त करने के लिये कमर कसता है। अपने से अलग हर व्यक्ति को दुनिया का प्रतिनिधि मानकर उसकी प्रत्येक बात को काटकर उसपर अपनी योग्यता सिध्द करने का प्रयत्न करता है।

`एन्.एल्.मास्टर` और `असहमत` में थोड़ी बहुत समानता होते हुवे भी उनके व्यवहार में अंतर है। एन्.एल्.मास्टर को इस व्यवस्था से कुछ नहीं मिल रहा है और असहमत को भी दुनिया कुछ नहीं दे रही है। इसका कारण जानते समय दोनों की मानसिकता और मनोविज्ञान का

अंतर सामने आता है। इसीलिये एल्.एल्.मास्टर संतोषी है, तो असहमन पूरी व्यवस्थापर क्रुध्द है। इस व्यंग्यकथा में परसाईजो ने अपने आप को एक कमजोर व्यक्तित्व के रूपमें प्रस्तुत किया है और अपने मुख्य पात्रको आक्रमण क्षमता को पूरीतरह से उभरने के लिये योग्य वातावरण निर्माण किया है।

दलीलें अनेक रूपों में दी जा सकती हैं, औचित्य भी विचित्र तर्कों से सिध्द किया जा सकता है। परसाईजो की ' असहमत ' यह व्यंग्यकथा इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

' गांधीजीका शाल ' इस कहानी के प्रमुख पात्र है - सेवकजी, जिन्हें म.गांधीजी के प्रति नितांत आदर है। सेवकजी जिसके भी संपर्क में आते है, उसे गांधीजीद्वारा दी गयी शाल का किस्सा जरूर सुनाते हैं। एक गांधीभक्त होने के नाते वे अपने आप को महान मानते थे। अपनी इस सामाजिक प्रतिष्ठा की हरदम रक्षा करने का वे प्रयास करते हैं। जैसे ही गांधीजी द्वारा दिया गया नीला शाल गुम हो जाता है वैसेही उनका मनोधैर्य टूटने लगता है। वे बिल्कुल निराश बन जाते है। सोचने लगते है - ' उस घर में अब किसी को क्या बुलाये, जिसकी श्री ही चली गयी है।' (7) शाल के बिना तो वे रह ही नहीं सकते थे। उन्होंने नया शाल खरीद लिया। धो-धोकर उसकी चमक कम कर दी। ' वस्तु नहीं, भावना सत्य है।' (8) इस तर्क से अपना समाधान कर लिया। परंतु पुराने शाल को लपेटकर जिस जोश में वे बोलते थे, आज वह जोश नहीं रहा। मिथ्याचार की कल्पना के प्रभाव से उनका सारा धीरज खो गया, पैर लड़खड़ाने लगे। और सेवकजी को शाल का जो किस्सा लोगों को सुनाना था, सुना नहीं पाये। सेवकजी लोगों के सामने झूठे साबित हुवे।

परसाईजी ने प्रस्तुत कथा में सेवकजी की महत्वाकांक्षा और उनके मूल्यों के टूटने की बात को वर्णित किया है। एक गांधीभक्त की हैसियत से लेखक ने सेवकजी के जीवन की दो महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है। पहली तो यह कि, वे गांधीजी के साथ जेल में गये थे। और दूसरी बात यह कि, उनके विवाह के समय आकर गांधीजी ने उन्हें आशिर्वाद देते हुवे शाल भेंट दी थी। इन दो घटनाओं के कारण सेवकजी का पूरा जीवन ही बदल गया और उनके साधारण व्यक्तित्व को एक विशिष्टता प्राप्त हो गयी। वे अपने आप को महान मानने लगे। उन्हें इस बात का विश्वास हो गया था कि, जो लोग गांधीजी को श्रेष्ठ मानते हैं, वे उनसे संबंधित व्यक्तिको भी उतनाही सम्मान देंगे।

सेवकजी ने अपनी गांधीभक्ति में साधनों की पवित्रता को विशेष रूपसे अपनाया था, जिसका एकमात्र प्रमाण था एक नीला शाल। शाल को वे अभेद्य कवच की तरह धारण करते थे। शाल से उनकी इज्जत थी, प्रतिष्ठा थी। उनके जीवन की एकमात्र शक्ति थी। इसीलिये तो शाल के खो जाने से उनका मनोबल टूटने लगा, सामाजिक प्रतिष्ठा लुप्त होती हुवी नजर आने लगी। उसे पुन: प्राप्त करने के लिये उन्होंने एक नया शाल खरीदा। परंतु ऐसा करने से उन्हें इस बात का एहसास होने लगा कि, मूल्य पहले से ही कमजोर पड़ गये थे, नैतिक मूल्य हार गये और महत्वाकांक्षाओं की विजय हुवी। परंतु यह विजय क्षणकाल की थी, इसीलिये तो कथा के अंत में सेवकजी डगमगाते हुवे दिखायी देते हैं।

सेवकजी ने अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को दुबारा पाने के लिये साधनों की पवित्रता को त्यागा, परंतु इस बात का पता लोगों को न चले इसलिये काफी सावधानी भी बरती। वे नहीं चाहते थे कि, लोग उन्हें गांधी भक्त न मानें। और उनकी बची-खुची सामाजिक प्रतिष्ठा

भी नष्ट हो जायें। यद्यपि सेवकजी का यह व्यवहार विचित्र और विशिष्ट लगता है, फिर भी विश्वसनीय है।

व्यंग्यकार सुखद भावनाओं के धुँधलके में नहीं बसता, वह तो यथार्थ के कठोर धरातलपर खड़ा रहता है। वह अपने धरातल से चीजें उठाता है और उन्हें सर्वथा नया अर्थ और सार्थकता देकर वापस लौटा देता है। इसे हम एक प्रकार से कला में जीवन का रचनात्मक पुन:सृजन कह सकते है। इसके उदाहरण के रूपमें `हनुमानकी रेल-यात्रा` इस व्यंग्यकथा का उल्लेख किया जा सकता है।

परसाईजी ने रामायण की कथा का संदर्भ लेकर यह बात जताने की कोशिश की है, जो हनुमान एक समय शक्ति का प्रतीक तथा बलशाली माना जाता था, वह आज के जमाने में बिल्कुल बलहीन बन गया है। अपनी शक्ति से सर्वत्र संचार करनेवाला हनुमान यदि आज के जमाने में होता और उसे रेलगाड़ी से यात्रा करनी पड़ती, तो निश्चित वह गलितगात्र बनता, इस बात को व्यंग्यात्मकता से बताने का लेखक ने प्रयास किया है।

रावण के बंदिवास से सीता को छुडाकर लाने के कार्य में हनुमान ने बहुत बड़ी जिम्मेदारी उठायी थी। यह पौराणिक संदर्भ सामने रखते हुये परसाईजी ने अपनी कहानी में भी उसे जानकीजी को दिल्ली से मद्रास लानेका काम सौंप दिया। हनुमान रेल्वे स्टेशनपर पहुँचा पर वहाँ इतनी भीड़ थी कि, वह आगे बढ़ नहीं सका। रेल के डिब्बे में घुसने की उसने भरसक कोशिश की, पर कोई फायदा नहीं हुआ। जो हनुमान रातोंरात हिमालयतक पहुँचकर लक्ष्मण के लिये वनौषधी लाये थे, वही हनुमान अपने कार्य में असफलता के असार देखने लगे। उन्होंने समझ लिया कि, वह अपनी स्वामिनीजी को स्वामी-

तक नहीं पहुँचा सकता । इसीलिये वह चाहता है कि, ऐसी अपमानित जिंदगी जीने की अपेक्षा गाड़ी के नीचे अपने प्राण दे दें।

`असंभव` यह शब्द जिसके कोश में नहीं था, ऐसा ताकतवर हनुमान आज बिल्कुल शक्तिहीन बन गया है। पौराणिक संदर्भ की पृष्ठभूमिपर यथार्थ का सही संकेत प्रस्तुत व्यंग्यकथा में मिलता है।

संपूर्ण मानवीय विडंबनाओं से गुजरते हुवे परसाई अपने आप को भी उघाड़ते हैं, वहींपर आत्मव्यंग्य की झलक दिखायी देती है। उनका आत्मव्यंग्य केवल एक आदमी का नहीं होता, बल्कि पूरे आत्म-वर्गका होता है। इसी प्रकार के प्रयास ने उनके लेखन को ज्यादा मानवीय और विश्वसनीय बना दिया है। परसाई जी ने यह समझ लिया है कि, प्रत्येक हरतकतका एक सामाजिक इतिहास होता है। इसीकारण जब वे अपनी पोल खोलते हैं, तो उनके समयकी पोल अपने आप खुल जाती है। इसी समझ के कारण ही वे अधिक जिम्मेदार और गंभीर निर्णय लेने की क्षमता रखनेवाले दिखाबी देते हैं।

केवल वर्गीय सच्चाई बतानेके लिये परसाई ने अपने लेखन में स्वयंकी पिटाई तथा हँसाई के लिये प्रथम पुरुष की शैलीका प्रयोग नहीं किया है बल्कि वे अपनी व्यक्ति गत सच्चाइयों को बारीकी के साथ पकड़ कर, ठीक रूपसे दिखा देते हैं।

परसाईजी ने अपने ही माध्यम से लेखक की प्रतिष्ठा, सामाजिक गरिमा, राजनैतिक महत्व आदि बड़ी बड़ी बातों की वर्गों में बँटे समाज में क्या असलियत है, यह बताने का प्रयास `मुफ्तखोर` जैसे आत्मव्यंग्य में किया है। धन को महत्व देनेवाले इस समाज में परसाई ने अपनी हैसियत बाजी के भ्रमों को तोड़ा है। दिल्ली के तंत्र में.जिसकी अवस्था

त्रिशंकु की तरह है, ऐसे केवल लेखक हरिशंकर परसाई नहीं, उनका संपूर्ण वर्ग है। यह वर्ग रोज भ्रम तोडता है, नये भ्रम पालता है। इससे उनकी मजबूती और प्रतिबध्दता का ही एहसास होता है। अपना शोषण न होने देने के लिये और भी मजबूती से खड़े रहने का प्रयास करते हैं। व्यवस्था को विरोध करने की ताकद उनके आत्म व्यंग्य में पायी जाती है।

इसतरह परसाईजी की कहानियों में व्यंग्य की विविधता को आसानी से पाया जाता है।

चतुर्थ अध्याय

संदर्भ सूची

१) ` आँखन देखी ` - संपादक कमलाप्रसाद । पृ.२३३

२) ` सदाचार का तावीज ` - हरिशंकर परसाई । पृ.१३५

३) सदाचार का तावीज ` - हरिशंकर परसाई । पृ.२२

४) ` सदाचारका तावीज ` - हरिशंकर परसाई । पृ.३८

५) ` जैसे उनके दिन फिरे - हरिशंकर परसाई । पृ.४९

६) ` सदाचार का तावीज ` - हरिशंकर परसाई । पृ.७७

७) ` सदाचार का तावीज ` - हरिशंकर परसाई । पृ. ९५

८) ` सदाचार का तावीज ` - हरिशंकर परसाई । पृ.९७